॥ श्रीहरिः ॥
162
उपकारका बदला
(पढ़ो, समझो और करो)
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

उपकारका बदला

(पढ़ो, समझो और करो)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

यह उपकारका बदला नामक पुस्तक कल्याणमें प्रकाशित 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें छपी घटनाओंका संग्रह है। इसमें मानव-जीवनको सात्त्विकतासे सजानेवाले, बहुमूल्य स्वर्णसूत्रोंका संग्रह किया गया है। पाठकोंको श्रद्धा तथा प्रसन्नताके साथ इन सूत्रोंसे अपने तथा दूसरोंके जीवनको अलंकृत करना चाहिये।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ-संख्या
१- उपकारका बदला		
(*श्रीधर कृपालु आयंगर*)	....	१
२- मनके अमीर चपरासी		
(*अध्यापक शिवप्रसाद सिंह*)	....	४
३- सुन्दर अन्त		
(*जैतसिंह खंडेलाके*)	....	६
४- स्नेहपूर्ण व्यवहार		
(*मदनमोहन सक्सेना*)	....	९
५- आदर्श ईमानदारी		
(*पं० रामप्रताप मिश्र*)	....	१०
६- दरिद्रकी सेवा		
(*परिपूर्णानन्द वर्मा*)	....	११
७- लालचके बदले ईमानदारी		
(*रामदर्शन पाण्डेय*)	....	१८
८- आत्मसंजीवनी		
(*विश्वामित्र वर्मा*)	....	१९
९- मंद करत सो करइ भलाई		
(*चारुचन्द्र शील*)	....	२२
१०- कृतज्ञता (*सीताराम गुप्त*)	....	३२
११- आदर्श चित्रों और वाक्योंका प्रभाव		
(*दुर्गाशंकर त्रिवेदी*)	....	३५
१२- जरा-से कुसंग, गंदे पोस्टर और सिनेमाका दुष्परिणाम		
(*एक भुक्तभोगी दुःखी छात्र*)	....	३६
१३- भगवान्‌का वरदान		
(*श्रीजैतसिंह खंडेलावाला*)	....	३९

विषय		पृष्ठ-संख्या
१४- मानवता *('स्नेहाब्धि')*	....	४२
१५- बच्चीकी बातका असर *(श्रीओमप्रकाश गंडा)*	....	४४
१६- भूलका प्रायश्चित्त तथा शुद्ध बुद्धिके विचार *(नन्दकिशोर झा)*	....	४५
१७- महात्माके लिये सरयूकी कृपा *(देवेन्द्र कुमार गन्धर्व)*	....	४८
१८- गुप्त दान *(एक जानकार)*	....	५२
१९- विचित्र सेवा *(जेठालाल कानजी शाह)*	....	५३
२०- सामूहिक प्रार्थना *(ब्रजलाल 'निरंकुश')*	....	५५
२१- धोबीकी ईमानदारी *(विष्णु कानपुरी)*	....	५७
२२- भलेकी भलाई सबकी भलाई करती है *(रतनलाल शर्मा)*	....	५८
२३- आँव (आमातिसार)-की अनुभूत दवा *(हीराप्रसाद वर्मा)*	....	६१
२४- आदर्श सद्व्यवहार *(बं० मीठालाल जोशी, पोन्नेरी, जिला चेंगलपेट)*		६२
२५- पंचामृतसे प्रेतको शान्ति *(श्याममनोहर व्यास, बी० एस्-सी०)*	....	६६
२६- सेवा-परायणता *(संत बाल)*	....	६८
२७- भगवान् जो करते हैं, सब मंगलके लिये करते हैं *(विश्वनाथ सिंह, एम्० ए०, साहित्यरत्न)*	....	७१
२८- धन पराव बिष तें बिष भारी *(राजकिशोर शर्मा)*	....	७३

विषय		पृष्ठ-संख्या

२९- सद्‌गुणवती बहू
(राखालचन्द्र बनर्जी) ७५
३०- कर्तव्यपालन
(धीरुभाई दवे) ८०
३१- कृतज्ञता
(ठाकुरप्रसाद शर्मा) ८२
३२- ईमानदार रसोइया
(शिवचरण शर्मा) ८६
३३- हृदयकी जलन
(श्रीलाल नथमल जोशी) ८८
३४- सुन्दरकाण्डका माहात्म्य
(गिरीश्वरप्रसाद सिंह बाँका) ९२
३५- महामनाकी ममता
(एक कृतज्ञ) ९३
३६- गुप्त और मूक सेवा
(सारस्वत) ९५
३७- अमृत भोजन
(कल्याण-परिवारका एक सदस्य) ९७
३८- देवी कहाँ गयीं ?
(नरभेराम राम ठक्कर) १०१
३९- भगवान् कब पुकार सुनते हैं ?
(श्रीचन्द्र दोनेरिया) १०३
४०- पैसेकी कीमत मनुष्यकी स्थिति और
उसके मनपर निर्भर रहती है *('बीज')* १०६
४१- सहानुभूति
(गोपाललाल गुप्त) ११०
४२- पुलिसकी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता
(मकनदास नरसीदास) १११

विषय	पृष्ठ-संख्या
४३- स्वप्नवत् संसार *(श्रीलाल नथमल जोशी)*	११३
४४- सुन्दरकाण्डका अद्भुत चमत्कार *(बी० एल० शर्मा, शाजापुर)*	११५
४५- हड्डी और मांसके नासूरकी अनुभूत दवा *(हरिश्चन्द्र अग्रवाल, पो० कैमरी, हिसार)*........	११६
४६- परदु:खकातरता और उदारता *(दादीका पाला-पोसा पौत्र)*	११७
४७- भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष दर्शन *(जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीराघवाचार्यजी महाराज)*	११९
४८- अतिथिदेवो भव (भीलका आतिथ्य-प्रेम) *(दुर्गाशंकर त्रिवेदी)*	१२१
४९- कृतज्ञता *(महादेवलाल बरगाह, एम्० ए०)*.............	१२४
५०- एक अभूतपूर्व सत्य घटना *(मदनलाल गुप्ता खण्डेलवाल, वकील)*..........	१२६
५१- पत्नीने पतिका ऋण चुकाया *(रामप्यारी देवी)*.........	१२८
५२- छात्रका कर्तव्यपालन *(नीलिमा, बी० ए०)*	१३०
५३- ईश्वरीय लीलाका चमत्कार *(उत्तमचन्द जैन, बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०, वकील)*	१३१
५४- सहृदयता *(मीठालाल जोशी, पोन्नेरी)*	१३३
५५- तक्षकदेव *(श्रीसुधाकर तिवारी, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न, बसन्त कालेज, राजघाट, वाराणसी)*	१३५
५६- बाँसुरी नयी, पर स्वर फटी *(गोविन्द)*	१३८
५७- अंगुलबेडा (whitlow) -की चमत्कारी दवा *(श्यामाचरण पाण्डेय, वैद्य, शास्त्री)*	१४२
५८- अरबकी इन्सानियत *(एन० ठक्कर)*	१४३
५९- यह पहला ही मिला *(अखण्डानन्द)*	१५०

॥ श्रीहरिः ॥

उपकारका बदला

घटना १९५७ की है। मैं, मेरे पिताजी, माताजी और मेरा छोटा भाई— हम सब जीपमें बोरदी गाँव गये थे। दुपहरको वहीं रसोई बनाकर भोजन किया और वहाँके दृश्य देखे। स्थान बहुत ही पसंद आया। शामको लगभग सात बजे वहाँसे वापस चले। लगभग आधा रास्ता कट चुका था। रास्तेमें एक नाला पड़ता था, उस नालेको पार करती हुई जीप बीचमें अटक गयी। मेरे पिताजी स्वयं ही जीप चला रहे थे। उन्होंने इंजन खोलकर खाई देखनेका प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ। अब क्या किया जाय। पिताजी एक टार्च लेकर सहायता प्राप्त करनेके लिये चले। होते-होते पौन घंटा बीत गया, पर पिताजीके लौटनेके चिह्न नहीं दिखायी दिये। हम सब बहुत घबराये। इतनेमें दूर कुछ प्रकाश दिखायी दिया। दो-तीन लालटेनें थीं। फिर कुछ आदमी लाठी और लालटेन हाथोंमें लिये आते दिखायी दिये। वे बिलकुल पास आ गये; तब पता लगा कि पिताजी इनमें नहीं हैं। इन आदमियोंमेंसे एकने कहा—'सरदार! भाग खुल गये, जान पड़ता है। अपने-आप ही सामनेसे शिकार मुँहमें आ रहा है, लगता है सगुन अच्छे हुए।'

'हाँ रे, ऐसा ही तो लगता है ....'

बातचीतको सुनकर हमलोग दंग रह गये। यह तो लुटेरोंकी टोली थी। इतनेमें उस सरदारने मुझसे पूछा—'क्यों रे छोकरे! तू जानता है कि हम कौन हैं? मैं कालिया हूँ।'

मैंने कहा—'देखो भाइयो! हमारी जीप खराब हो गयी है, मेरे पिताजी मददके लिये गये हैं।'

'ओहो—तब तो तेरा डोकरा मददके लिये गया है, क्यों? तो मुझे अब उतावली करनी पड़ेगी।' यों कहकर उसने मेरी बहिनकी ओर देखकर कहा—'ए छोरी! तेरे ये गहने उतार दे, जल्दी कर। अभी तो हमें लम्बी राह काटनी है।' इतनेमें पिताजी हाथमें टार्च लिये अकेले ही आते दिखायी दिये। पास आकर और इन आदमियोंको देखकर उन्होंने मुझसे पूछा—'क्यों, श्रीधर! यह कहाँसे मदद मिली?'

सरदारने भयंकर हँसी हँसकर कहा—'तेरी मददके लिये ही आये हैं हमलोग। कुछ बोझा तो हलका कर ही देंगे। इस छोकरीके गहने तथा तेरी घड़ीका भार कम हो जायगा।' यों कहकर उसने लाठी ऊपर उठायी, हम समझ ही नहीं पाये कि अब क्या करना है।

इतनेमें ही उस सरदारने पिताजीसे पूछा—'अरे, तू क्या धंधा करता है?' मेरे पिताजीने कहा—'मैं जानवरोंका डॉक्टर हूँ। यह सुनकर सब एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। सरदारकी आवाज बदल गयी—'तो अरे भैया! पहले ही क्यों नहीं कह दिया? मैं तुम्हें लूटूँ, यह कभी नहीं हो सकता; तेरे बिना हमारा जीना कैसे हो? हमारे ढोर, हमारी गौमाताको अच्छी करनेवालेका हम एक भी बाल बाँका नहीं करेंगे। भूल हो गयी, बापजी मुझसे भूल हो गयी।'

फिर तो उसने अपने साथियोंको आदेश दिया—'अरे, देख क्या रहे हो? ढकेलो न इस खटारेको अपने घरकी ओर।' तुरन्त

ही सब ढकेलने लगे। वहाँका इनका अतिथि-सत्कार तो मुझसे कभी भुलाया ही नहीं जा सकेगा। सबेरे, जीवनमें कभी नहीं पिया हो, ऐसा गरमागरम बढ़िया दूध पीनेको दिया। रातको तो पता नहीं लगा, परन्तु सबेरे पिताजीने ग्रामको पहचान लिया। वे स्वयं एक बार यहाँ एक गायका बछड़ा जनाने आये थे। इस बातको कहते हुए सरदार बोला—'तुम सच कहते हो। तुम मेरे ही घर आये थे। तुम भूल गये होगे, पर हम नहीं भूलते। उपकार करनेवालेका गुण भूलें तो नरकमें जाना पड़े।'

इसके बाद उसने दुपहरको भोजन करके जानेके लिये कहा; परन्तु जब हमलोगोंने जानेका पक्का निश्चय बताया तब उसने हमारी जीपको मुख्य सड़कतक ढकेलवा दिया। वहाँसे जाती हुई एक ट्रालीके पीछे बाँधकर हमलोग अपनी जीप ले गये।

(अखण्ड आनन्द)

—श्रीधर कृपालु आयंगर

मनके अमीर चपरासी

जिन दिनों १९४७ ई० से १९५० तक—मैं शिक्षा-विभागमें सहायक उपनिरीक्षक-पदपर बलिया जिलेमें ही काम करता था, कुछ हिंदू चपरासियोंके बाद मुझे एक मुस्लिम चपरासी श्रीअब्दुल रहमान मिले, जो ठाट-बाटमें मुझसे भी बढ़कर रहते थे। उन्हें देखकर अपरिचित अध्यापक भ्रममें पड़ जाते थे। मुसलमान सब डिप्टी इन्सपेक्टरोंसे उनकी पटरी नहीं बैठती थी, पर न जाने क्यों मेरा जूतातक उठाकर सुरक्षित स्थानमें रख देनेमें उन्हें संकोच नहीं था। लड़कोंद्वारा साबुन लगानेमें भूल होनेपर वे मेरे कपड़े भी स्वयं साफ कर देते थे। मैं स्वयं तथा मेरे कुछ साथी इन्हें पहले बड़ा घमण्डी समझते थे, परन्तु सम्पर्कमें आनेपर हमलोगोंके विचार बदल गये। वे अविवाहित थे। गोलमेज सम्मेलनके समय किसी अंग्रेज अधिकारीके साथ लन्दन भी हो आये थे।

निरीक्षण-कालके दौरेमें नदी पार करनेपर मल्लाहको पैसे अवश्य देते थे, ठेकेदारको भले ही न दें। अनेक बार ऐसा देखनेपर मैंने इसका कारण पूछा—तो कहा, 'मल्लाह गरीब आदमी है, ठेकेदार मालदार है।' मेरी विस्मृतिका रुपया भी उनके पाससे पूरा लौटता है।

बलिया स्टेशनपर सम्पन्न घरानेका एक लड़का मैजिस्ट्रेटी चेकिंगमें पकड़ लिया गया। उन दिनोंके मैजिस्ट्रेट छात्रोंपर १०१रु० अर्थ-दण्ड करते थे। लड़केके रोने-गिड़गिड़ानेका कुछ भी प्रभाव उनपर नहीं पड़ा। हुक्म हुआ 'तुरंत रुपया दो या जेल

जाओ।' स्टेशनपर सैकड़ोंकी भीड़ थी। लड़का छुटकारा पाते ही तुरंत रुपये मँगा देनेकी बात कहता था, पर किसीके कानपर जूँ न रेंगी। हमारे उक्त चपरासीने साहबसे कहा—'साहब! हमसे रुपये ले लीजिये और लड़केको छोड़ दीजिये।' साहबने कहा—'तुम इसे पहचानते हो? चपरासीका उत्तर था—नहीं ।' इसपर साहबने कहा—'तो क्यों रुपये चुकाते हो? वापस नहीं मिलेंगे।' श्रीरहमानका उत्तर था—'कोई चिन्ता नहीं।' रुपये देकर ज्योंही लड़का छुड़ाया गया त्योंही घरवाले आ गये। रहमानको रुपये मिल गये, परंतु सब लोग उस गरीब, परंतु मनके अमीर चपरासीकी मानवताको देखकर दंग रह गये।

—अध्यापक शिवप्रसाद सिंह

सुन्दर अन्त

प्रायः लोग संशय किया करते हैं कि मरनेके समय कर्मानुसार पार्षद, धर्मराजके दूत या यमदूत प्राणोंको लेने आते हैं या नहीं और अजामिलकी कथाको पौराणिक गल्प बता देते हैं। नीचे लिखे मेरे प्रत्यक्ष अनुभवसे मुझे तो पूर्ण विश्वास हो गया है कि अवश्य कर्मानुसार दूत आते हैं।

सं० २००१ के मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमीकी रातकी घटना लिखता हूँ। महाराज बुद्धसिंहजी बीमार थे। उन्हें Carbia Asthma यानी हृदयरोगसे दमा और बुखार था। शुरू कार्तिकमें वे बीमार हुए थे, परंतु किशनगढ़में डॉक्टर-हकीमोंके इलाजसे कोई फायदा नहीं हुआ। मुझे समाचार मिलनेपर मैं किशनगढ़ गया और उन्हें डॉ० हैलिग (जर्मन हृदय-विशेषज्ञ)-का इलाज कराने जयपुर ले आया। डॉक्टरने देखकर कहा कि 'मेरा इलाज आज ही शुरू कर दो तो आठ दिनोंमें काफी ठीक हो जायँगे।' परंतु भावी प्रबल है। उनके घरवालोंको यह जँची कि वैद्यका ही इलाज कराया जाय। मैंने भी सोचा कि 'भावी तो टलेगी नहीं, जिस समय जो होना है, होगा ही, उसे एक सेकेंड भी कोई टाल नहीं सकता।' जयपुरके एक प्रसिद्ध वैद्यका इलाज चला। बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। तीन दिन बाद फिर डॉक्टर हैलिगको बुलाया तो उसने कह दिया कि अब इलाज नहीं हो सकता। वैद्यजीकी चिकित्सा चलती रही। मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमीको वैद्यने भी जवाब दे दिया और डॉक्टरने भी कहा कि आजकी रात नहीं निकलेगी। रात होनेपर उनके बड़े लड़के मा०

सरदारसिंहजीको जो साथ थे, मैंने सो जानेको कह दिया और मैं उनके पास बैठ गया। श्वासकी गति बहुत मंद हो गयी थी और वे अचेत-अवस्थाकी तरह सो रहे थे। रातके बारह बजे करीब कुछ बचपनकी बातें याद आनेसे तन्द्रामें ही बचपनके साथी बालकोंके नाम लेकर, जैसे बचपनमें किया करते होंगे, खेल-कूदकी बातें करने लगे। मैंने यह समझकर कि इनके प्रयाणका समय आ रहा है और '**अन्त मता सो मता**' उन्हें जगाया। चेतनावस्थामें आनेपर मैंने उनसे कहा—'महाराज साहब! इस समय और सब ध्यान हटाओ, 'श्रीनाथजी', 'श्रीनाथजी' कहो।' उनके इष्टदेव या कुलदेव श्रीनाथजी थे, जैसा कि किशनगढ़ राजघरानेमें हैं। उन्होंने आँखें खोलकर मुझे देखा और 'श्रीजी-श्रीजी' चार-पाँच दफा बोलकर रह गये। मैं पलँगके पास बायीं ओर बैठा उन्हें देखता रहा। अन्तिम श्वास थे। किसी भी समय हिचकी आने या प्राण जानेके लक्षणोंकी सम्भावना देख रहा था। चार बजे सुबह उन्होंने फिर आँख खोली और सिर घुमाकर बायीं और दायीं तरफ देखा और बोले '**थे कुण हो, थे कुण हो। पीताम्बर पहरय्याँ हो, तिलक लगायाँ हो। ब्राह्मण हो? मनैं लेबा आया हो? चालू हूँ भाई चालू हूँ।**' (आप कौन हैं? आप कौन हैं? पीताम्बर पहने हैं, तिलक लगाये हैं। ब्राह्मण हैं? मुझे लेने आये हैं? चलता हूँ भाई, चलता हूँ।) इतना कहकर हमेशाके लिये आँखें बंद कर लीं। मुझसे उनका बड़ा प्रेम था। अतः उनकी मृत्युसे दुःख भी हुआ, परंतु यह सद्गति देखकर चित्तको सान्त्वना भी मिली। इस घटनासे मुझे यह विश्वास हो गया कि '**अन्त मता सो मता**' और प्राणान्तके समय पार्षद,

धर्मराजके दूत या यमदूत अपनी करनीके अनुसार अवश्य आते हैं। यह करनी एक दिन, एक महीने नहीं, सारी आयु महाराज बुद्धसिंहजीकी तरह सरल चित्तसे उनका होकर रहे तभी सिद्ध होती है। नहीं तो, अन्त समयमें भगवान्‌का नाम मुँहसे निकलना कहाँ रखा है।

'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥'

उन्हें अन्त समयमें डर न लगा, न वे घबराये, न चिल्लाये, न चीखे। शान्तिसे सोते रहे और जैसे गंगाकी लहर शान्तिसे आकर विलीन होती है, यह जीवन समाप्त किया। बोलो, श्रीराधा-सर्वेश्वरकी जय!

—जैतसिंह (खंडेलाके)

स्नेहपूर्ण व्यवहार

एक दिन मैं हरगाँवसे ट्रेनद्वारा सीतापुर जा रहा था। दोपहरके लगभग साढ़े बारह बजेका समय था। वर्षा-ऋतु थी। जिस समय ट्रेन स्टेशनपर आयी, वर्षा हो रही थी। जिस डिब्बेमें मैं चढ़ा था उसमें कुछ सम्भ्रान्त घरानेकी लड़कियाँ बैठी थीं।

जैसे ही ट्रेन चली, उसी डिब्बेमें एक ग्रामीण स्त्री भागते-भागते चढ़ी। उसकी गोदमें एक छोटा बालक था, जो वर्षासे बिलकुल भीग गया था। उसकी कमीज भीगी होनेके कारण उस स्त्रीने निकाल डाली थी। बालक ठंडसे काँप रहा था और जोर-जोरसे रो रहा था। ग्रामीण स्त्री चुपानेका प्रयत्न करने लगी और उसने उसको अपनी धोतीमें लपेटना चाहा; परंतु उसकी धोती भी सारी भीगी थी। अतः बालकको आराम न मिला। इतनेमें ही उन सम्भ्रान्त घरानेकी लड़कियोंमेंसे एकने अपने बक्समेंसे एक कुछ पुरानी धोती निकाली और उसमेंसे एक बड़ा टुकड़ा फाड़कर उस स्त्रीको दे दिया। पर वह स्त्री संकोचवश कपड़ेमें बालकको लपेटनेमें झिझकी। मैंने तथा अन्य यात्रियोंने उसे कपड़ा लपेटनेको कहा, इतनेमें उस लड़कीसे न रहा गया और वह स्वयं बालकके पास गयी और उसको गोदमें लेकर, कपड़ेसे पोंछकर उसमें लपेट दिया। बालकने आराम पाकर रोना बंद कर दिया।

वैसे बात है बहुत छोटी, परंतु मेरा हृदय उच्च कुलकी लड़कीके उस ग्रामीण बालकके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहारसे द्रवित हो गया।

—मदनमोहन सक्सेना

आदर्श ईमानदारी

जामडोबा कोलियरीसे एक मीलकी दूरीपर डूमरी नं० ४ कोलियरीके एक सज्जन श्रीअनूपसिंह निवास करते हैं। वे अच्छे व्यापारी हैं। उनके यहाँ डूमरी नं० ७ के रहनेवाले श्रीजगनारायण उपाध्यायने चौदह हजार रुपये धरोहरके रूपमें रख दिये थे। इस बातका पता उन दो व्यक्तियोंके अतिरिक्त और किसीको भी नहीं था। भावीवश श्रीजगनारायणजी उपाध्यायकी अकस्मात् मृत्यु हो गयी। तदनन्तर श्रीअनूपसिंहजीने उनके घरवालोंको बुलाकर चौदह हजार रुपये उनको दे दिये। वे सभी दंग रह गये।

—पं० रामप्रताप मिश्र

दरिद्रकी सेवा

घटना अलीगढ़की है। सत्य कथा है, कपोलकल्पित नहीं। एक विद्वान् पण्डितजीने मुझे बताया कि एक संध्याको वे अलीगढ़की नगरीमें एक पानकी दुकानपर खड़े थे। एक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण उनके पास आया। पण्डितजीके सामने हाथ फैलाकर उस ब्राह्मणने कहा—

'चार पैसेका गुड़ दिला दीजिये।'

पण्डितजीको बुरा लगा। उन्हें विक्रमादित्य तथा कालिदासकी कथा याद आ गयी। विक्रमके दरबारमें नर-बलि करनेवाला एक राक्षस आया। उसने नर-बलिकी अनुमति चाही। भला, ऐसी आज्ञा कैसे मिल सकती थी? उस राक्षसने कहा कि 'या तो अनुमति दो या मेरे प्रश्नका उत्तर दो'—

'नष्टस्य कान्या गतिः?'

'जो नष्ट हो गया है उसकी और क्या गति होगी?'

इस टेढ़े प्रश्नका उत्तर देनेके लिये विक्रमने सात दिनका समय माँगा। यह भार कालिदासपर सौंपा गया। सातवें दिन प्रातःकाल संध्यावन्दनके समय कालिदास एक भिखारीके वेषमें उस कर्मकाण्डी राक्षसके यहाँ पहुँचे और भिक्षा माँगी। राक्षसने पूजन-पाठके समय एक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मणको भिक्षा माँगते देखकर उसे फटकारकर कहा—

'तुम्हें लज्जा नहीं आती कि इतने हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण होकर प्रातःपूजनके समय भीख माँग रहे हो?'

उस ब्राह्मणने कहा—

'महाराज! मैं जुआ खेलता हूँ।'

'ब्राह्मण और जुआ! धिक्कार है तुमको।'

'जुआ खेलते-खेलते मैं मदिरापान करने लगा।'

'हे भगवन्! तुम्हारा इतना पतन।'

'मदिरा पीनेसे वासनावृत्ति जागी। अतएव मैं वेश्यावृत्ति करने लगा हूँ।'

'उफ, तुम्हारे पतनकी सीमा नहीं है!'

'वेश्यावृत्तिके लिये धनकी आवश्यकता होती है। अतएव मैं चोरी करने लगा।'

'तो फिर तुम ब्राह्मणत्व बिलकुल खो बैठे।'

'चोरी, वेश्यावृत्ति, मदिरा, जुआ—मैं दर-दरकी ठोकरें खाने लगा।'

'तब तुम भिखारी बन गये छिः।'

राक्षसने घृणापूर्वक कहा।

तब भिखारी ब्राह्मण बोला—

'नष्टस्य कान्या गतिः?'

राक्षसको उसके प्रश्नका उत्तर मिल गया। जिस ब्राह्मणका इतना पतन होगा, जो एक कुमार्गपर चलेगा उसे अनगिनत कुमार्गपर चलना पड़ेगा। वह नष्ट होकर रहेगा और उसकी अन्य गति क्या होगी। वह दर-दरकी ठोकरें खायेगा।

हमारे विद्वान् पण्डितजीने सोचा कि ऐसी ही कोई बात इस ब्राह्मणके साथ भी होगी।

उन्होंने उस ब्राह्मणसे कहा—

'भाई! तुम हृष्ट-पुष्ट हो, कोई कारोबार करो। भीख माँगना

बड़ा भारी पाप है।'

भिखारीने पण्डितजीके नेत्रोंमें नेत्र गड़ाकर एक क्षणके लिये देखा। फिर दृढ़ स्वरसे बोला—'हो सके तो गुड़ दिला दीजिये। नहीं तो, स्पष्ट उत्तर दीजिये। मैं ऐसे उपदेश रोज सुनता हूँ।'

पण्डितजीको उसकी बातोंसे ऐसा लगा कि वह अपढ़ नहीं है। उन्होंने फिर कहा—

'यदि स्वयं नहीं कमा सकते तो तुम्हारी सन्तान तुम्हारा पालन-पोषण क्यों नहीं करती?'

भिखारीने सौम्यभावसे कहा—

'पत्नी, सन्तान सभी निकम्मे निकल गये। बोलो गुड़ खिलाते हो या नहीं?'

अब हमारे विद्वान् मित्र उसकी स्थिर मुद्रासे इतने प्रभावित हो चुके थे कि उन्होंने पैसे निकाले, गुड़ खरीदा। जबतक वह गुड़ खाकर पानी पीता रहा, वे उसकी ओर देखते रहे। पानी पीकर वह आश्वस्त हुआ। फिर उसने पण्डितजीसे कहा कि 'जरा दूर मेरे साथ चलिये।' पासमें ही एक उद्यान था। वहाँ पहुँचकर वह भिखारी ब्राह्मण कुछ क्षण मौन रहा। फिर एकाएक उस आशुकवि पण्डित भिखारीने कहा—

विद्या सत्कविता तथा सुजनता सेवापि च प्रार्थना
पञ्चैताः परिणिन्यिरे जनयितुं वित्तात्मजं यत्नतः।
व्यापारं सकलं विहाय नितरां तत्रैव रेमे मुहुः
किं कुर्वे कुटिलाशयेन विधिना पञ्चापि वन्ध्याः कृताः॥

'उस ब्राह्मणने कहा कि मैंने अपने जीवनमें पाँच विवाह किये। विद्यासे मैं पण्डित हो गया। कवितासे मैंने अच्छी कविता

करना सीख लिया। सुजनतासे मैं बड़ा अच्छा जीवन, सदाचारी जीवन बिताने लगा। सेवासे मैंने नौकरी भी की। प्रार्थनासे मैंने चाटुकारिता तथा प्रार्थना भी काफी की। इन पाँचों स्त्रियोंके साथ मैंने सब काम छोड़कर दत्तचित्त हो रमण किया। पर अपने कुटिल भाग्यको क्या कहूँ कि ये पाँचों स्त्रियाँ वन्ध्या निकलीं। इनसे कोई सन्तान नहीं हुई जो मेरा पोषण करती। यानी सब कुछ करके देख लिया, मेरा भाग्य ही साथ नहीं देता। अतएव भीख माँगता फिरता हूँ।'

प्रयत्न या परिश्रमसे धनकी प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है। भाग्य बड़ी भारी वस्तु है। इसके एक ही झटकेसे सब करे-धरेपर पानी फिर जाता है। मनुष्यके जीवनमें भाग्य बड़ी भारी वस्तु है। दरिद्रता दुर्भाग्यके कारण होती है। अतएव भाग्यके लिये भाग्यके स्वामी भगवान्की शरणमें जाना चाहिये।

किंतु, धन उसीके पास आता है जो दूसरेके दुर्भाग्यको समझता है, पहचानता है या जानता है। जिसके मनमें दूसरेके दुर्भाग्यके प्रति कोई सहानुभूति नहीं, उसका जीवन अन्ततोगत्वा भाग्यशाली नहीं रह सकता। हमारे भाग्यका विधाता दरिद्र है। दूसरेकी दरिद्रता है। जो दरिद्र होता है, वह संसारको अधिक अच्छी तरहसे पहचानता है। वह संसारसे अधिक परिचित है। इसीलिये तो लिखा है—

भो दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन॥

'हे दारिद्र्यदेव! तुमको नमस्कार। तुम्हारे प्रसादसे ही मैं सिद्ध हो गया हूँ। मैं दरिद्र हूँ, मेरी ओर कोई नहीं देखता है,

पर मैं संसारभरकी ओर देख रहा हूँ।'

एक दरिद्रको जब संसारमें जीवितोंकी बस्तीमें कहीं सहारा नहीं मिला, तब वह मरनेवालोंके स्थानपर गया। वह श्मशान जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि एक शव बड़े आरामसे लेटा है। विश्राम कर रहा है। उसकी यह शान्ति तथा सुख देखकर दरिद्रने उससे कहा—

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह गुरं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिरं मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशानं शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः॥

'हे सखे! जरा एक क्षणके लिये उठकर मेरी दरिद्रताका बोझ सँभाल लो। मैं इसे ढोते-ढोते थक गया हूँ और तुम आरामसे सो रहे हो। श्मशानमें जब शवने दरिद्रकी यह बात सुनी तो उसने सोचा कि 'दरिद्रतासे कहीं अच्छा है मर जाना।' यह सोचकर वह चुपचाप लेटा ही रहा। उसने दरिद्रकी प्रार्थनाका कोई उत्तर ही नहीं दिया।'

जब दरिद्रता इतनी बुरी चीज है तथा दरिद्रका साथी मुर्दा भी नहीं है, तब हम अपने सीमित साधनोंमें उसकी सहायता तो कर ही सकते हैं। भिखारी हमसे भीख नहीं माँगने आता। वह तो हमें सीख देने आता है कि 'दो, भाई! दो। दान दो। नहीं दोगे तो हमारे-जैसे हो जाओगे।'

भिक्षुका नैव याचन्ति शिक्षयन्ति गृहे गृहे।
देयं देयं पुनर्देयं न देयं फलमीदृशम्॥

इस संसारमें जो कुछ प्रकाश है वह धनी तथा समृद्धिकी

ज्योतिसे नहीं, पीड़ित तथा परित्यक्तकी ज्योतिसे है। यदि अन्धकारसे प्रकाशमें आना है तो दरिद्रकी आत्माको पहचानना होगा।

क्या खबर सितम नवाज बे-खबर जहानको।
दिल जलोंकी आहसे हो रही है रोशनी॥

मृत्यु एक निश्चित सत्य है। अमीर हो या गरीब, मरना सभीको है। यदि मरना निश्चित है तो फिर धनकी गठरी भी क्या काम देगी। धन संचय करनेवालेने यदि केवल उसका संचय किया और दूसरेकी सहायता नहीं की तो निश्चय ही मृत्युके समय उसके प्राण बड़े संकटमें रहेंगे।

पूछत पूत कपूत बाबू धन केतनों कहाँ।
प्रान परे साँकरे न हाँ करे न ना करे॥

जीवनके उस पार धनका नहीं, निर्धन तथा परसेवापरायणका महत्त्व होता है। यही सद्‌गुरु हमें सिखाते हैं, अन्यथा उस पार क्या है, कौन जाने।

उतते कोउ न आइआ जासे पूछूँ धाय।
इतते सब कोई जात है भार लदाय लदाय॥
उतते सतगुरु आइआ, जाकी बुधि है धीर।
भवसागरके जीवको खेइ लगावे तीर॥

बाबा कबीरकी यह वाणी याद रखनी चाहिये। हमें दूसरेकी या अपनी दरिद्रतापर दया नहीं, संकोच करना चाहिये। उसे कर्म तथा भाग्यका फेर, दोनों ही मानना होगा। भाग्य तथा कर्म सद्‌गुरुकी कृपा तथा उपदेशसे सुधरते हैं। पर, अपने सुधारके साथ दूसरेके सुधारकी बातें भी सोचनी चाहिये। मानव-

जीवनकी पहेलीको यदि सही ढंगसे सुलझाना है तो अपने तथा परायेके भाग्यको समानरूपसे सँवारना होगा। केवल अपना-अपना करनेसे कुछ नहीं होता। जीवनमें साहसके साथ, श्रद्धाके साथ, विश्वासके साथ, भगवान्‌में आस्था रखकर जो व्यक्ति जीवन बिताता है, उसीका जीवन सफल होता है, अन्यथा वाल्मीकिरामायणके अनुसार—

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥

'जो पुरुष निरुत्साह, दीन और शोकाकुल रहते हैं, उनके सब काम बिगड़ जाते हैं और वे बहुत बड़ी विपत्तिमें पड़ जाते हैं।'

—परिपूर्णानन्द वर्मा

लालचके बदले ईमानदारी

कुछ समय पहलेकी बात है, मैं और मेरे पिताजी श्रीरामचरित्र पाण्डेयजी छपरासे आ रहे थे। छपरामें हमलोग श्री एस० एम० राजा एक्सपोर्टके यहाँसे आ रहे थे। छपरामें भगवानबाजार स्टेशनपर चढ़े। वहाँसे हमलोगोंको मोतीहारी आना था। हमलोगोंके पास करीब छः सौ रुपये थे, जिसमेंसे सौ मेरे पास और पाँच सौ पिताजीके पास थे। पिताजीने उन रुपयोंको अपनी ऊपरवाली जेबमें रख लिया था। ट्रेनमें अधिक भीड़ होनेके कारण पिताजी ऊपरके पाटियेपर, जिसपर सामान रखा जाता है, चढ़ गये और बिस्तरा बिछाकर सो गये। उनके चढ़नेके समय ही रुपये जेबसे निकलकर नीचे एक बंगाली महिला बैठी थी, उसके पैरोंपर गिर पड़े थे। उस समय तो उस महिलाने कुछ भी नहीं कहा, किंतु जब गाड़ी मुजफ्फरपुरमें पहुँची और हमलोग अपने बिस्तरोंको सँभालकर चलने लगे, तब उस महिलाने पूछा कि 'आपका कुछ छूटा भी जा रहा है क्या?' पिताजीने देखा तो उनको कुछ मालूम नहीं हुआ। उसने नोटोंका बंडल निकालकर दिया और नोट कैसे कब गिरे थे यह सुनाया। पिताजी बहुत प्रसन्न हुए और उन देवीका परिचय प्राप्त कर हमलोग प्रसन्नतासे अपने घर लौटे। उन देवीका नाम श्रीविमला कुमारी था। वे कलकत्तामें रहती हैं। उनकी सदाशयता और महानताके हमलोग सदा कृतज्ञ हैं।

—रामदर्शन पाण्डेय

आत्मसंजीवनी

दि० १९-३-६१ रविवारको प्रात: अपने ही विषहर जंगल डभौरा (रीवाँ) म० प्र० में चलते हुए कुटियासे लगभग सौ गज दूर पेड़के नीचे मुझे लकवा हो गया। एक घंटेभरमें धीरे-धीरे होशमें ही पाँवसे सिरतक सारा दक्षिणांग गतिहीन—शून्य हो गया। मैं घबराया नहीं, संसार मिट्टी और जीवन नि:सार प्रतीत होने लगा, समझा कि देहत्याग होगा; क्योंकि लकवासे ग्रस्त होकर वैज्ञानिक इलाजसे लोगोंको बरबाद और मरते देखा था, अत: स्वयं अस्पष्ट लाचार वाणी बोलते और कलम पकड़नेसे लाचार होकर दूसरेसे माथाफोड़ करते हुए करीब पचास पत्र मित्रों, स्नेहियों और पत्रकारोंको लिखवा दिये। आधा अंग बेकार जडवत् होनेसे मैं सालभरके बालकसे भी गया-बीता था।

लोग मुझे देखने आते, तेल-मालिश दवाकी राय देते, डॉक्टर अस्पतालकी बात करते।

क्या डॉक्टर, अस्पतालके लोग रोगी नहीं होते, नहीं मरते? दुनियामें सचमुच रोगकी दवा होती तो लोग रोगी न होते और न मरते। दवा प्राय: अन्धविश्वास और अधिक रोगी बनानेके लिये धोखेका सौदा है।

मैं उसी पेड़के नीचे, खुली वायु और धूपमें पड़ा रहा, भोजन त्याग दिया, केवल गरम पानीका बाह्यान्तर प्रयोग करता रहा, रोगके आक्रमणकी क्रिया जडता तथा आत्मचिकित्सामें क्रमश: अंगोंमें स्पन्दनका अनुभव मैंने दिन-रात करते हुए देखा है कि शरीरमें आत्मा कैसे कार्य करता है। तुलसीदासजीने कहा है—

'कहिअत भिन्न न भिन्न'

प्राचीन उपनिषत्कारोंने कहा है—

यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति।

जिससे सब ज्ञात हो सके वही विज्ञान है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

सूर्य स्थावर-जंगमका मूल है।

वह आत्मसंजीवनी मेरे जीवनमें स्वयंसिद्ध प्रमाणित हुई। मैं चार दिनमें स्पष्ट बोलते हुए, अब लिखता-पढ़ता बारह दिनोंमें चलने-फिरने लगा हूँ। कल ही एक फर्लांग चला था। रोग हमारा शत्रु नहीं, वरं हमारे विकारके रूपमें हमारा चिकित्सक मित्र है, तन-मनका शोधक है। इतना ज्ञान और आत्मसुधार लोग कर सकें तो संसारमें रोग न हो। परंतु वैज्ञानिकोंने आत्मशोध न करके परमाणु और कीटाणुओंकी शोध करके वैज्ञानिक खेतीद्वारा संसारसे रोग-दु:ख मिटानेके और उन्नतिके नामपर रोग बढ़ाये और विनाशकी स्थिति उत्पन्न कर दी। विज्ञानमें आत्मा नहीं, प्राण नहीं। वैज्ञानिक बतावें कि दो नथुनोंसे श्वास चलनेका रहस्य क्या है?

ओषधि कही जानेवाली वस्तुएँ जड और विषतुल्य हैं, उनमें जीवन नहीं। धोखेका सौदा है। लकवेसे अथवा अन्य रोगोंसे ग्रस्त लोगोंको वैज्ञानिकोंके आश्रममें चिकित्सा कराते देख लोगोंको बरबाद होते मरते हुए मैंने देखा है। आत्मज्ञान-आत्मशोधके बिना विज्ञान फीका और नपुंसक है। जो लोग इतर चिकित्सा-पद्धतियोंको अवैज्ञानिक कहते हैं, प्रकृतिको शरीरका

शत्रु कहते हैं, वे पहले अपनी वैज्ञानिकता सिद्ध करें। विज्ञानसे प्रकृति पैदा हुई या प्रकृतिमेंसे विज्ञान पैदा हुआ।

आज बारह दिनमें, किसी विकृत ज्ञानकी ओषधि बिना मैं लकवासे मुक्त हूँ, दूसरे लोग भी मुक्त हो सकते हैं। विज्ञानकी शरणमें गये हुए लोग बारह महीनेमें बहुत धन व्यय और लगातार अनेक विद्युत् और चमत्कारी प्रयोगसे अच्छे न होकर, बरबाद अपंग बने हुए हैं। ईसामसीहने कहा है—

Creator is He that is in you.

Than that which is in the world.

Nearer is He, than your hands and feet.

इसको सिद्ध करो, यही जीवन है।

—विश्वामित्र वर्मा
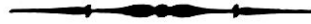
मंद करत सो करइ भलाई

कुछ वर्ष पुरानी बात है। रामतनु चाटुर्ज्ये हुगली जिलेके एक छोटे-से गाँवमें रहते थे। उनके पिता पुरोहितीका काम करते थे। पर उनकी इच्छा लड़केको पढ़ाकर उसे अच्छी नौकरीमें लगा देनेकी होनेसे उन्होंने रामतनुको इंट्रेंसकी परीक्षा पास करवाकर कलकत्ते भेज दिया और वहाँ एक सरकारी महकमेमें नौकर रखवा दिया। वे वहाँ पढ़ते भी रहे। धीरे-धीरे एफ्० ए० कर लिया। उन्नति करते-करते दो सौ रुपये महीनेपर एक सरकारी स्कूलमें हेडमास्टरी करने लगे। उस जमानेमें दो सौ रुपये महीनेकी नौकरी बहुत बड़ी चीज थी। इससे रामतनु बाबूका गाँवमें गौरव बढ़ गया था। गाँवमें उनका एक पड़ोसी अधरचन्द्र था। वह रामतनुकी इस उन्नति और गौरवसे बहुत जलता था और समय-समयपर रामतनुकी बदनामी करने, उनपर लांछन लगाने तथा नुकसान पहुँचानेकी चेष्टा किया करता था। रामतनु तथा उनकी स्त्री दोनोंके स्वभाव बहुत अच्छे थे। वे अभिमान तो करते ही नहीं, किसीका बुरा करनेकी कल्पना तो उनके मनमें कभी आती ही नहीं, वे गाँवभरका सहज ही भला चाहते थे और यथासाध्य किया भी करते थे। इससे गाँवमें उनकी शोभा-कीर्ति और भी बढ़ गयी थी। यह भी अधरचन्द्रकी जलन बढ़ानेमें एक खास कारण था। रामतनुको उसकी इस मनोवृत्तिका कुछ भी पता नहीं था।

एक समय छुट्टियोंमें रामतनु गाँवपर आये हुए थे। अधरचन्द्रने दो-तीन गुंडोंको पहलेसे ही तैयार करके एक दुष्ट-योजना बना

रखी थी। बाहरसे किसी एक आवारा स्त्रीको वहाँ बुला लिया था। स्कीम थी कि किसी दिन वह स्त्री व्यर्थ ही हो-हल्ला मचावे, रामतनुपर लांछन लगावे और उसी समय वे गुण्डे तथा अधरचन्द्र उस स्त्रीकी रक्षाके बहाने रामतनुपर टूट पड़ें। स्कीमके अनुसार ही काम हुआ। एक दिन रामतनु कहीं बाहरसे घर आ रहे थे। दुपहरका समय था। एक छोटी-सी सुनसान गली थी। निश्चित स्थानपर वह स्त्री खड़ी थी। रामतनु उसके पाससे निकले कि उसने बड़े जोरोंसे चिल्लाकर पुकारा—छोड़ दे, छोड़ दे—बदमाश कहींका—'हाय! हाय! तू ब्राह्मण मास्टर होकर मेरा शील लूटना चाहता है। अरे कोई बचाओ।' रामतनु तो हक्के-बक्के रह गये। वह रामतनुके बिलकुल समीप आ गयी थी। कपड़े अस्त-व्यस्त कर रखे थे उसने। अधरचन्द्र तो गुण्डोंको लिये छिपा खड़ा ही था। तुरन्त आकर हल्ला मचाते तथा रामतनुको गालियाँ बकते हुए उन्हें मारने लगा। गुण्डे भी प्रहार करने लगे। रामतनुकी तो कुछ समझमें नहीं आया कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है। हल्ला सुनकर आस-पासके घरोंमेंसे लोग निकल आये। खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। गाँवके लोग तो रामतनुके स्वभावसे परिचित और उनके प्रति अत्यन्त सहानुभूति तथा श्रद्धा रखते थे। प्रायः सभी उनसे उपकार पाये हुए थे। रामतनुके उपकार तो अधरचन्द्रपर भी कम नहीं थे। पड़ोसीके नाते वह बीसों बार उनकी सहायता प्राप्त कर चुका था। एक बार तो अधरचन्द्रको प्लेग हो गया था, डबल गिल्टी थी। सारे गाँवमें प्लेग फैला था। घरवाले भी सब अधरचन्द्रको छोड़कर चले गये थे। उस समय एक रामतनु ही ऐसे थे जो

अपने पड़ोसी अधरकी सेवामें चौबीसों घंटे लगे रहे, दवा-दारू की और उसे बचाया। घरवाले तो दस दिनके बाद लौटे थे। पर कृतघ्न तथा दूसरेको दुःख देनेमें ही सुखका अनुभव करनेवाले अधरचन्द्रपर रामतनुके उपकारोंका कोई असर नहीं था। इसी दुष्ट स्वभाववश वह आज अपनी आसुरी क्रियामें लग रहा था। उसने तो हो-हल्ला इसलिये मचाया था—गाँववालोंको वह अपने पक्षमें कर ले। रामतनुके प्रति वे सब नाराज हो जायँ तथा गाँवभरमें रामतनुकी बदनामी हो जाय। पर भगवान् तो सब देखते ही हैं। वहाँ एकत्र हुए गाँववालोंमें एकाधको छोड़कर प्रायः सभी रामतनुको सच्चा सत्पुरुष तथा निर्दोष मानते थे और अधरचन्द्रको दोषी। वे अधरचन्द्रके दुष्ट स्वभावसे भी परिचित थे। उनमेंसे एकने उस स्त्रीको भी पहचान लिया, वह समीपके गाँवकी ही एक बड़ी बदनाम दुश्चरित्रा थी। उसका पेशा यही था। गुण्डे भी पहचाने गये। लोगोंने तुरन्त रामतनुको बचा लिया। गुण्डोंपर तथा अधरचन्द्रपर उनको रोष आ गया। वे सब इनपर टूट पड़े, पर सात्त्विक-हृदयके श्रीरामतनु महाराज इसको नहीं सह सके। उन्होंने हाथ जोड़कर स्वयं अपनेको बीचमें डालकर उन सबको बचाया। हालाँकि उस समय उनके सारे शरीरमें मारके कारण बड़ी पीड़ा हो रही थी। कनपटीके पास तथा बायें कन्धेपर लाठीकी चोटसे खून बह रहा था। पर वे इसकी परवा न करके अपने स्वभाववश उन दुष्टोंको बचानेमें लग गये। आखिर अपनी शपथ दिलवायी तथा मारनेवालोंकी मार स्वयं सहनेको तैयार हो गये। तब उन दुष्टोंकी जान बची। वह स्त्री तो पहचाने जाते ही भाग गयी।

इधर यह सब देखकर दो आदमी भागकर दो मील दूर एक गाँवमें थाना था, वहाँ खबर देने पहुँच गये थे। उनसे इस जुल्मकी बातें सुनते ही दारोगाजी सिपाहियोंको साथ लेकर तुरन्त चल दिये। दारोगाजी भी भाग्यसे रामतनुजीके द्वारा उपकृत थे। रामतनुजी विद्वान् तथा उच्च पदपर नौकरी करते थे, इससे सरकारी क्षेत्रमें उनका बड़ा आदर था, सभी उनकी इज्जत करते थे। उन्होंने ही आरम्भमें दारोगाजीकी नौकरी लगायी थी। दारोगाजीने पहुँचते ही जाँच की और गुण्डोंसहित अधरचन्द्रको पकड़ लिया। पचासों आदमी गवाही देनेको तैयार थे। सिपाहियोंको भेजकर दारोगाजीने उस आवारा स्त्रीको भी पकड़ मँगवाया। उसने आते ही अपराध स्वीकार किया और बताया कि वह तो अधरचन्द्रके द्वारा पंद्रह रुपये पाकर उसके कथनानुसार करनेको आयी थी। उसे जैसा करनेको अधरचन्द्रने कहा था, वैसा ही किया। उसे यह पता नहीं था कि ये लोग रामतनु बाबूको मारेंगे।

गुण्डे भी पुलिसके भयसे ढीले पड़ रहे थे। यह सब देखकर अधरचन्द्रके होश हवा हो गये। वह बिलकुल घबरा गया। काँपने लगा और उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। यह सब देखकर रामतनुबाबू बहुत दुःखी हो रहे थे। उन्हें अपने अपमान तथा चोटका कष्ट तो भूल गया। वे अधरचन्द्रके दुःखसे दुःखी होकर उसे छोड़ देनेके लिये दारोगाजीसे विनम्र अनुरोध करने लगे।

दारोगाजीने बड़े आदरसे, परन्तु कड़ाईसे कहा कि— 'रामतनुबाबू! आप पुलिसके काममें दखल न दीजिये। हमने दुष्टोंको रँगे हाथों पकड़ा है और हमारे पास इनको सजा

दिलानेके लिये सबूत तथा गवाह मौजूद हैं। अपराधोंका घटाना पुलिसका कर्तव्य है। अपराधोंका घटना अपराधियोंके सजा मिलनेसे ही सम्भव है। हम इस सम्बन्धमें आपका कोई अनुरोध नहीं सुनना चाहते।' रामतनुजीने फिर बहुत कहा, तब दारोगाजीने कहा कि—'हमने तो आपके घावों तथा चोटोंकी जाँच करके रिपोर्ट देनेके लिये हुगलीसे सरकारी डॉक्टरोंको बुलवाया है और आप इन दुष्टोंको छुड़ाना चाहते हैं।'

पुलिसवालोंने रामतनुबाबूको आदरसहित उनके घर पहुँचा दिया। वहाँ एक सिपाही इस कामके लिये बैठा दिया गया, जो डॉक्टर आनेपर उनकी रिपोर्ट लेकर थानेपर आ जाय। गाँवके बहुत-से लोग रामतनुबाबूके घरपर जमा हो गये। सभी चाहते थे दुष्टोंको दण्ड मिले। पर रामतनुबाबूको बड़ा मानस-क्लेश हो रहा था। वे किसी भी उपायसे अधरचन्द्रको बचाना चाहते थे। बड़ी व्याकुलता थी उनके कोमल हृदयमें—

'पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥'

वे गाँववालोंसे बोले—'देखिये, मनुष्य अपने-अपने स्वभावके अनुसार बर्ताव-व्यवहार करता है। परंतु दुःख तो सभीको होता है। आज मेरे कारणसे अधरचन्द्र तथा उसके परिवारको कितनी पीड़ा हो रही है। सचमुच उनकी इस पीड़ामें मैं ही कारण हूँ। किसी भी हेतुसे हो, अधरबाबू मेरे कारणसे दुःखी थे और उस दुःखने ही उनसे ऐसा व्यवहार करवा दिया। वस्तुतः मुझपर जो मार पड़ी, वह तो मेरे अपने पूर्वकृत कर्मका फल है। मेरा प्रारब्ध ऐसा न होता तो अधरचन्द्रमें क्या शक्ति थी कि वे मुझको कष्ट पहुँचा सकते। यह तो मेरे ही कर्मका फल मुझे मिला। वे भूलसे

इसमें निमित्त बनकर अपना बुरा कर बैठे, यह उनकी भूल है। भूला हुआ आदमी दया तथा क्षमाका पात्र होता है। वह तो पागल है न? अतएव मेरी प्रार्थना है—एक बार हमलोग चलकर दारोगाजीसे प्रार्थना करें कि वे इस मामलेको आगे बढ़ावें ही नहीं। वे न मानें तो फिर ऐसी व्यवस्था करें कि अधरचन्द्रके विरुद्ध कोई भी भाई गवाही न दें। मैंने तो अभी बयान दिया नहीं है। मैं अपने बयानमें कह दूँगा कि पैर फिसलकर गिर पड़नेसे मेरे चोट आ गयी।

आपलोग एक बातपर और विचार कीजिये—अबतक अपने गाँवका यश सर्वत्र फैला है। किसीको भी किसी अपराधपर कभी सरकारी दण्ड नहीं मिला। कभी अपने गाँवके नामपर दाग लगा ही नहीं। अब यदि अधरबाबू दण्डित हो गये तो गाँवपर धब्बा लग जायगा। लोग चर्चा करेंगे कि उस गाँवमें ऐसे लोग रहते हैं। अतः प्रकारान्तरसे गाँवका ही नाम बदनाम होगा। आगे चलकर इससे कुछ लोग अनुचित लाभ उठाकर गाँववालोंको परेशान भी कर सकते हैं। अतः इस भावी विपत्ति तथा कलंकके टीकेसे बचनेके लिये भी अधरबाबूपर कोई कार्यवाही नहीं होनी चाहिये और वे निर्दोष ही छूट जाने चाहिये। गाँवभरको निष्कलंक बनाये रखनेके लिये यह बड़ा आवश्यक है।' गाँववाले तो यह सब सुनकर दंग थे। कोई मन-ही-मन रामतनुबाबूकी प्रशंसा कर रहे थे और कोई-कोई उनकी इस दयाको कायरता, देश-काल-पात्रका विरोधी आचरण, अपराध बढ़ानेकी चेष्टा और मूर्खता बतला रहे थे। रामतनुबाबूकी आँखोंसे परदुःख-कातरताके कारण आँसू बह रहे थे।

उधर पुलिसके आते ही गाँवभरमें समाचार फैल गया था। अधरबाबूकी स्त्री बड़ी घबरा रही थी। वह भली थी, वह पतिको यह सब दुष्कर्म करनेसे रोका भी करती थी। पर वह खल-हृदय उसकी बातको मानता ही नहीं था। रामतनुबाबूकी स्त्री अबलासे उसकी बहुत प्रीति थी। रामतनुबाबूकी पत्नी—यह सोचकर कि कहीं आवेशमें आकर गाँवके लोग अधरबाबूकी स्त्रीको परेशान न करें—दौड़कर उसको अपने घर ले आयी थी और उसको समझा दिया कि 'हमलोगोंके द्वारा अधरबाबूका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा।' वह अपने भले पति रामतनुबाबूके सत्स्वभावसे परिचित थी और इस स्वभावके रक्षण तथा संवर्धनमें उनकी सहायक भी थी। अस्तु! इस समय रामतनुबाबू गाँववालोंसे जो कुछ कह रहे थे, सब अधरचन्द्रकी स्त्री सुन रही थी और उसके हृदयमें रामतनु तथा उनकी पत्नी अबलाके प्रति श्रद्धा बढ़ी जा रही थी और अपने पतिके दुष्ट स्वभावके कारण अपने प्रति लज्जा और घृणा।

गाँववालोंमें श्रीहरिपद नामक एक सात्त्विक स्वभावके वृद्ध सज्जन थे। उनको रामतनुकी बातें बहुत अच्छी लगीं और उन्होंने रामतनुबाबूकी प्रशंसा करते हुए तथा उनका समर्थन करते हुए गाँववालोंको समझाया। गाँववालोंका मन कुछ पलटा। इतनेमें डॉक्टर आ गये। डॉक्टर भी रामतनुबाबूसे परिचित तथा उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। रामतनुबाबूने समझाकर डॉक्टरसे यह लिखवा लिया कि 'उन्होंने सब जाँच कर ली है। रिपोर्ट पीछे देंगे।' रामतनुबाबूने अधरचन्द्रके अनुकूल रिपोर्ट लिखनेके लिये डॉक्टरसे बहुत अनुरोध किया, पर डॉक्टरको उनकी यह बात

नहीं जँची। आखिर वे इस बातपर राजी हो गये कि 'हम रिपोर्ट अभी नहीं दे रहे हैं। इस बीच आप दारोगाजीको राजी कर लीजिये, केस ही न चले तो फिर हमारी रिपोर्टकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सारा मामला ही समाप्त हो जायगा।' इसीके अनुसार उन्होंने रिपोर्ट पीछे देनेकी बात लिख दी थी।

डॉक्टरके लौट जानेपर रामतनुबाबू गाँवके चार-पाँच सम्भ्रान्त वृद्ध पुरुषोंको लेकर थानेपर गये। दारोगाजीको सब बातें समझायीं और रो-रोकर श्रीअधरचन्द्र तथा उसके साथियोंको बिना केस चलाये छोड़ देनेका अनुरोध किया। दारोगापर रामतनुके इस विलक्षण व्यवहारका प्रभाव पड़ा। उस दिन भाग्यसे थानेमें पुलिसके सर्किल इन्सपेक्टर प्रमथबाबू आये हुए थे। वे भी यह सब सुन-देख रहे थे। उनपर प्रभाव पड़ा। दारोगाजीने उनसे बात की। ये सारी बातें अधरचन्द्र और उसके साथी भी सुन रहे थे। गाँवमें भी रामतनुकी चेष्टा तथा बातें वे देख चुके थे। अतः उनका हृदय अपने दुष्कर्मपर पश्चात्तापकी आगसे जल रहा था और वह क्रमशः बदलकर निर्मल हुआ जा रहा था। जो काम बड़े-बड़े दण्डों तथा जेलोंसे नहीं हो सकता, वह रामतनुजीके सद्व्यवहारसे अनायास हो रहा था।

प्रमथबाबूने बीचमें पड़कर गाँववालोंसे कहा—'देखिये! आपलोग एक अपराधीको जो अपराध करते समय पकड़ा गया है, बचाने जाकर अपराध बढ़ानेमें सहायक बन रहे हैं और प्रकारान्तरसे समाजका तथा अपने गाँवका अहित करने जा रहे हैं। ऐसे अपराधीको जरा भी दण्ड नहीं मिलेगा तो अपराध करनेवाले लोगोंका दुःसाहस बढ़ेगा जो समाजके लिये बड़ा

घातक होगा। ये रामतनुबाबू तो साधुहृदय हैं, ये इस बातको नहीं समझ सकते। पर आपलोग इनके इस पागलपनका साथ क्यों दे रहे हैं?'

इसपर श्रीहरिपद तथा रामतनुबाबूने अनेकों युक्तियोंसे प्रमथबाबूको समझानेकी चेष्टा की कि वास्तवमें दण्डसे अपराध नहीं घटते। अपराध घटेंगे तो प्रेम तथा सहानुभूतिसे ही घटेंगे। कष्टके समय अहैतुक सेवा प्राप्त करनेपर ही अपराधीका हृदय-परिवर्तन होगा। फिर उन्होंने यह भी कहा कि 'हमलोगोंने निश्चय किया है कि न तो आपको अधरबाबूके विरुद्ध एक भी गवाह मिलेगा न कोई सबूत ही। तब आप क्या करेंगे?'

प्रमथबाबू प्रभावित तो पहलेसे ही थे। अब उनपर और भी प्रभाव पड़ा। पर उन्होंने जरा रुखाईसे कहा—'देखिये, मुझे आपलोगोंके प्रति आदर है—आपकी उदारताका मैं सम्मान करता हूँ, पर इस प्रकार सहसा अपराधीको छोड़कर हमलोग कर्तव्यविमुख नहीं होना चाहते। हम सोचेंगे—क्या किया जा सकता है। आपलोग अभी उन्हें छुड़ाना चाहते हैं तो हमलोग अस्थायीरूपसे इन्हें छोड़ देते हैं, परंतु कोई इनकी जमानत देनेवाले आपलोगोंमेंसे तैयार हो जायँ।'

इसपर रामतनुबाबू तुरंत बोल उठे—'महाशय! मैं जमानत मुचलका जो कुछ आप कहें, देनेको तैयार हूँ।'

यह सुन-देखकर इन्सपेक्टर प्रमथबाबू तथा दारोगाजी दोनोंका हृदय द्रवित हो गया। वे भी आखिर मनुष्य ही थे। उन्होंने अधरचन्द्रको बुलाकर कहा—'देखा तुमने? सुनी सब बातें? कहाँ तुम और तुम्हारा बर्ताव और कहाँ ये और इनका बर्ताव!

अब तुम क्या कहते हो?' अधरचन्द्रकी आँखें तो सावन-भादोंके बादल बनी हुई थीं। उसने रोते तथा घिघियाते हुए कहा—'हुजूर! पश्चात्तापकी आगने मेरे हृदयकी सारी कालिमाको जलाकर खाक कर दिया है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, मैं पिशाच हूँ और ये महान् संत हैं, देवता नहीं, देवताओंके भी पूजनीय महात्मा हैं। पर मैं बचना नहीं चाहता। मुझे आजन्म कालापानी मिलना चाहिये। पर मेरे अपराधोंको देखते तो आजन्म कालापानी भी पर्याप्त नहीं होगा। मैंने जीवनभर अपराध-ही-अपराध किये हैं। सदा भला करनेवालोंका भी सदा बुरा किया है। यद्यपि उनकी कृपासे मेरे हृदयकी सारी कालिमाका विषभरा कूड़ा आज जल गया है। इसीसे मैं बचना नहीं चाहता। आप मेरा चालान कीजिये। मैं स्वयं अपना अपराध स्वीकार करूँगा।'

यह सुनकर रामतनुबाबू रो पड़े और लपककर उन्होंने अधरचन्द्रको हृदयसे लगा लिया और उसके आँसू पोछने लगे।

प्रमथबाबूकी रायसे दारोगाजीने उन लोगोंको छोड़ दिया। सब कागज फाड़ दिये गये। सब सानन्द बिदा हुए। प्रमथबाबूने तथा दारोगाजीने रामतनुबाबूकी चरण-धूलि ली। रामतनुबाबू बड़े आदरसे अधरचन्द्रके गलेमें हाथ डाले चले जा रहे थे। रामतनुबाबूका चेहरा खिल रहा था और उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू थे। अधरचन्द्रका सिर नीचा था, मुख उदास था और नेत्रोंसे पश्चात्तापके आँसुओंकी धारा बह रही थी। गाँववाले घेरे चल रहे थे। गुण्डे भी भले मानव बनकर घर लौट रहे थे।

—चारुचन्द्र शील

कृतज्ञता

मोहनलाल बड़े गरीब घरका लड़का था। उसके माता-पिता मर गये थे। उसकी जातिके ही एक धनी सज्जनने बच्चेको अनाथ समझकर अपने पास रख लिया। नौकरकी भाँति नहीं, बच्चेकी भाँति। मोहनलाल उनकी सभी प्रकारकी सेवा बड़ी प्रसन्नतासे करता और वे उसे बड़े प्यार-दुलारसे पढ़ाते, खिलाते-पिलाते, सार-सँभाल रखते। बड़ा होनेपर उसे एक कपड़ेकी दूकान करवा दी। समयकी बात, कुछ समय बाद उस सज्जनकी मृत्यु हो गयी। विधवा पत्नी रही और एक लड़का श्यामलाल रहा। लड़का सुशील था। उसका विवाह हो चुका था। वह अपना कारोबार सँभालता था। गोदाममें माल रहता। एक दिन रातको अकस्मात् गोदाममें आग लग गयी। उस समय बहुत कम लोग बीमा कराते थे। साढ़े तीन लाखका गोदाममें माल था। दमकल देरसे पहुँची। गोदामका सारा माल देखते-देखते जलकर खाक हो गया। डेढ़ लाख रुपये तो उनके घरके थे। दो लाख लोगोंके देने थे। कुछ और देना-पावना था। सब मिलाकर लगभग डेढ़ लाख रुपये देने रह गये। इसी बीच श्यामलालको चिन्ताके मारे टी० बी० की बीमारी हो गयी और दो ही महीनेमें उसका देहावसान हो गया। बच रही उसकी विधवा माता तथा युवती वधू। तीन महीनेके अंदर ही यह सब अनर्थ हो गया।

मोहनलाल किसी कामसे देश गया था। वहाँ उसको संग्रहणी हो गयी। इससे वह विशेष अशक्त हो जानेके कारण कलकत्ते आया नहीं। कुछ अच्छा होनेपर आया और उसने श्यामलालकी

गोदाममें आग लगने तथा उसके देहान्त हो जानेका समाचार सुना तो वह सन्न रह गया। काटो तो खून नहीं! वह तुरंत श्यामलालके घर पहुँचा और माँकी गोदमें पड़कर रोने लगा। उसको बड़ा पश्चात्ताप इस बातका था कि इस सारी अनर्थमयी दुर्घटनाके समय वह दूर रहा और जान भी नहीं पाया कि क्या हो गया।

उसकी दूकान अच्छी चल निकली थी। विवाह आदि भी हो गये थे। उसके पास साठ-सत्तर हजारकी पूँजी भी हो गयी थी। उसने रोकर कहा—माताजी! श्यामलाल भाई तो जाता रहा, पर तुम्हारा यह अभागा छोटा बेटा मोहनिया अभी जीवित है। श्यामलालकी पूर्ति तो मैं नहीं कर सकता, पर मैं जबतक जीवित हूँ, तुमको जरा भी कष्ट नहीं होगा। मेरे पास अपना कुछ भी नहीं है। मेरे शरीरकी प्रत्येक खूनकी बूँद स्वर्गीय पिताजीकी देन है। मैं उनका बदला सौ जन्ममें भी नहीं चुका सकता। चुकानेकी कल्पना भी नहीं करता। मैं बड़ा अभागा हूँ जो तुमको और पूजनीया भाभीजी—भाई श्यामलालकी पत्नीको इस अवस्थामें देख रहा हूँ। मैं अब यहीं तुम्हारे चरणोंमें रहूँगा। सेवा करूँगा। तुम्हारी छोटी बहू तुम्हारी तथा भाभीकी चाकरी करेगी। जो कुछ रूखा-सूखा भगवान् देगा, सब मिलकर खायेंगे। मैं कमाकर सारा ऋण चुकाऊँगा, यह नहीं कि यह सब मैं पिताजीके उपकारका बदला चुकानेके लिये करूँगा। बदलेका तो सवाल ही नहीं, पर मैं ऐसा किये बिना रह नहीं सकता। अतः अपने सुखके लिये ही करूँगा।' यों कहकर वह फुफक-फुफककर रोने लगा। वे दोनों सास-बहू भी रोने लगीं, मोहनलालकी स्त्री भी रो रही

थी। श्यामलालकी माताने मोहनलालको हृदयसे लगाकर उसके आँसू पोंछे।

तबसे मोहनलाल और उसकी स्त्री खरीदे गुलामकी तरह उसकी सेवामें रहने लगे। उन दोनोंके सद्व्यवहारसे वे अपना दुःख बहुत कुछ भूल गयीं। मोहनलालकी कीर्ति फैली, इज्जत बढ़ी तथा साथ ही कारोबार भी। दो ही सालमें श्यामलालका सारा ऋण ब्याजसमेत चुका दिया गया। अपनी दूकानका नाम भी पलटकर उनका कर दिया तथा दोनों पति-पत्नीने दोनों सास-बहुओंकी निर्दोष सेवामें लगे रहकर अपना सारा जीवन बिताया। मोहनलालके एक लड़का था, उसको श्यामलालकी बहूको गोद दे दिया। अपना नाम मिटाकर मोहनलालने अपने धर्मपिता तथा भाई श्यामलालका नाम वंशपरम्परामें चलाया धन्य!

—सीताराम गुप्त

आदर्श चित्रों और वाक्योंका प्रभाव

आदरणीय शम्भूसिंहजी कौशिक और मैं निमाड़ क्षेत्रका भ्रमण कर रहे थे। एक दिन हमें एक अध्यापक महोदयने अपने घर निमन्त्रित किया। वह दिन रविवारका था। हम दोनों उनके घर गये। बैठकमें हमने महापुरुषोंके चित्र और वेदवाक्योंके बोर्ड लगे हुए देखे तो मन प्रसन्न हो उठा। कुछ देर इधर-उधरकी बातें होती रहीं तो वे सज्जन कुछ फल लेकर आये; कारण हमें उपवास था। हमसे उन्होंने फलाहार करनेका आग्रह किया तो 'कौशिकजी' ने उन्हें भी फलाहार करनेको कहा।

इतनेमें ही उनका ९ वर्षीय पुत्र वहाँ आ गया। उसने कौशिकजीका आग्रह सुना तो दीवालकी ओर इशारा करके वह अपने पितासे बोला, 'दादा! अपने यहाँ लिखा है, जो अकेला खाता है वह चोर है। इसलिये ये अकेले नहीं खायेंगे, ये चोर थोड़े ही हैं।'

हमने उधर दीवालकी ओर देखा, वहाँपर बोर्ड लगा था—

'केवलाघो भवति केवलादी।'

(जो अकेला खाता है, वह चोर है।)

अनायास ही हमारे दिमागमें आदर्श चित्रों एवं आदर्श वाक्योंके लिखने एवं निरन्तर उस वातावरणमें पलनेवालोंपर उनका क्या प्रभाव होता है, यह समझमें आ गया, क्योंकि प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या है।

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी

जरा-से कुसंग, गंदे पोस्टर और सिनेमाका दुष्परिणाम

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। मैं........में पढ़ता था। बी० एस्-सी० फाइनलकी तैयारी कर रहा था। एक दिन दुर्भाग्यवश एक छात्र-मित्रके घर चला गया। वे सिनेमाके शौकीन थे। मैं अबतक कभी सिनेमामें नहीं गया था, उस ओर न मेरा कभी ध्यान गया था, न मेरी रुचि ही थी। पढ़नेमें ही मन लगा रहता था। इसीसे मैं अबतक सदा प्रथम श्रेणीमें ही उत्तीर्ण होता रहा। उन मित्रने मुझको साथ ले जाकर पहले तो कई ऐसे पोस्टर दिखलाये जिनमें सिनेमा-तारिकाओंके प्रायः नग्न-से चित्र थे। फिर लौटकर दो-चार सिनेमा-सम्बन्धी पत्र दिखलाये, जिनमें बहुत-सी तरुणी अभिनेत्रियोंके विविध भाव-भंगिमाओंके चित्र थे और उनका वर्णन था। तदनन्तर उन्होंने सिनेमाकी मौजका वर्णन किया और गंदी बातें न मालूम क्या-क्या कह गये। मैं ऊपरसे 'ना'-'ना' करता रहा, पर मेरा मन उन बातोंको सुननेके लिये खिंच रहा था। मैं उस दिन लौट तो आया, पर मेरा मन अब काबूमें नहीं रहा। मैं दूसरे ही दिन सिनेमा पहुँचा। ऊँचे दर्जेका टिकट लिया और देखने जा बैठा। उसी दिनसे मेरा जीवन बदल गया। अब तो मैं रोज सिनेमा देखने लगा। किसी दिन नहीं जा पाता तो बड़ी बैचेनी रहती। एक दिनकी बात, मैं संध्याके समय देखने गया था। मेरे बगलमें ही एक अपरिचित सुन्दरी तरुणी बैठी थी। पीछे पता लगा कि वह भी एक कॉलेजकी छात्रा थी। उस दिन सिनेमामें कुछ ऐसा दृश्य था कि उसे देखकर मैं पागल-

सा हो गया। मेरा मन बेकाबू हो गया। यही दशा उस तरुणी छात्राकी भी हुई। खेल समाप्त होते ही परस्पर संकेत हुआ और हम दोनों चल दिये किसी अज्ञात स्थानको। कहाँ गये, क्या किया यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। पर हम दोनोंका ही पतन हो गया। पढ़ाई-लिखाई सारी चौपट हो गयी। मैं परीक्षामें फेल हो गया। हमारी सिनेमाकी प्रवृत्ति और साथ-ही-साथ पाप-सरितामें बहनेकी वृत्ति बढ़ती गयी। संक्षेपमें—परिणाम यह हुआ कि उस कुमारी तरुणीको इसी वर्ष टी० बी० की बीमारी भी हो गयी और वह माता-पिताको रुलाकर चल बसी! मैं जिंदा तो रहा, पर मेरा चौमुखा पतन हो गया। मैं शराबी-कबाबी भी हो गया। चोर भी बन गया। बड़ी बुरी हालत हुई। दूसरी बार परीक्षा दी, उसमें भी फेल हो गया!

हमारे एक मामाजी हैं। वे बड़े बुद्धिमान् हैं। उन्होंने मेरी बीमारीको पहचाना और गत वर्ष जुलाईसे वे मेरी गतिविधिपर विशेष ध्यान रखने लगे। बड़े प्यारसे वे मुझे कुपथसे हटानेकी चेष्टा करने लगे। फलतः मेरा सिनेमा जाना कुछ कम हुआ। फिर वे मुझे एक दिन........के पास ले गये। उन्होंने मुझको बहुत अच्छी तरह समझाकर मुझसे प्रतिज्ञा करवायी कि मैं अबसे सिनेमा नहीं देखूँगा, शराब आदिका स्पर्श भी नहीं करूँगा। फिर उन्होंने सिनेमासे होनेवाली बुराइयोंको बतलानेवाली एक किताब पढ़नेको दी। मैं तो स्वयं ही सिनेमाकी बुराइयोंका शिकार था। इस पुस्तिकासे मुझे बड़ी सहायता मिली। मेरे पिताजीने भी मुझको डाँटा-फटकारा नहीं, पर बड़े स्नेहसे रो-रोकर समझाया। भगवत्कृपासे तबसे मेरी प्रतिज्ञा निभ रही है। मैंने इस कुमार्गके

क्षेत्रमें पड़कर देखा, मेरे-जैसे हजारों युवक-युवतियोंका सर्वनाश हो रहा है। वे यह मीठा विष पीकर जर्जरित हुए जा रहे हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ, वे सबको सुबुद्धि दें। सरकारसे भी मेरी प्रार्थना है कि वह मेरे-जैसे लाखों तरुण-तरुणियोंकी जीवन-रक्षा तथा चरित्र-रक्षाके लिये बहुत शीघ्र ही या तो देशका सर्वनाश करनेवाली सिनेमा-संस्थाका उन्मूलन कर दें या इसमें पर्याप्त सुधार करके इसे देशोपयोगी बना दें। पर जबतक यह प्रचुर धन पैदा करनेवाली चीज रहेगी और इसमें तरुणी स्त्रियाँ भाग लेंगी तबतक सुधार होना बड़ा कठिन है।*

—एक भुक्तभोगी दुःखी छात्र

---
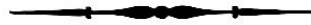
* उपर्युक्त पत्रको संक्षिप्तरूपमें छापा गया है, नाम-पते भी नहीं छापे जा रहे हैं। सिनेमाका क्या दुष्परिणाम होता है, इसका यह एक छोटा-सा उदाहरण है। सिनेमासे कितने प्रकारके और अनर्थ हो रहे हैं, उनकी तो चर्चा ही यहाँ नहीं है। सिनेमाके द्वारा होनेवाले सर्वनाशकी कोई सीमा नहीं है। यह देशके लिये एक भयानक अभिशाप बन रहा है। पता नहीं, इसका क्या भीषण परिणाम होगा। अवश्य ही सिनेमाके बंद होनेकी बात सोचना वर्तमान वातावरणमें एक व्यर्थ चिन्तन और सिनेमाका विरोध करना भी अरण्य रोदन-सा ही होगा। परंतु यह उपेक्षाका विषय कदापि नहीं है। हमारे पास ऐसे अनेक भुक्तभोगियोंके पत्र आते हैं, जिन्हें पढ़कर हृदय काँप उठता है। सम्मान्य संत श्रीविनोबाजीने गंदे पोस्टरोंके विरुद्ध आन्दोलन चलाया था। हम चाहते हैं सरकार कानून बनाकर उनका प्रचार बंद करा दे। साथ ही सिनेमासे होनेवाले भयानक दुष्परिणामपर भी गम्भीरतासे विचार करके कुछ ठोस उपाय सोचे।

—सम्पादक

भगवान्‌का वरदान

‘वह किधर गये’, वह किधर गये’ ये शब्द डॉक्टरोंके द्वारा मरी हुई घोषित की गयी मेरी माताने चौका लगी हुई जमीनपर पड़े-पड़े आँखें खोलकर दाहिने और बायें सिर घुमाकर देखते हुए कहा। मेरी दादीने, जो पास ही बैठी रो रही थी, प्रसन्न तथा विस्मित होकर पूछा—‘बीनणी! किसे पूछ रही हो, तबीयत कैसी है?’ माताजीने कहा—‘श्रीकृष्ण-अर्जुन किधर गये!’ दादीजीने कहा—‘श्रीकृष्ण-अर्जुन यहाँ कहाँ हैं? तबीयत तो ठीक है? बोलो मत, कमजोरी बढ़ेगी।’ उन्होंने (दादीजीने) समझा, प्रलाप है। पुनर्जीवनकी खुशीमें दादीजीने पुण्य संकल्प किया और मेरे पिताजीको मर्दानेमें सूचना दी गयी। और्ध्वदैहिककी सब तैयारी बंद की गयी और डॉक्टर तथा वैद्यने जो बाहर मर्दानेमें थे, जनानेमें जाकर बीमार माताजीको देखा तो हृदयकी गति ठीक पाने तथा पुनः जीवित होनेपर आश्चर्य करने लगे। मैं और मेरे दो भाई तथा एक बहन एक कमरेमें पड़े रो रहे थे, सो हम भी खुशीमें उछलने-कूदने लगे। घंटे-दो-घंटे सुस्तानेके बाद मेरी माताजीने घरकी सब नौकरानियोंके सामने मेरी दादीसे कहना शुरू किया……‘भाभीसा! मुझे भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके साक्षात् दर्शन हुए हैं, मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं यहाँ मर गयी हूँ और बादलोंमें चल रही हूँ। चारों ओर धुआँधार-सा हो रहा है। थोड़ी देरमें बादल फट गये और मैं हरी-हरी घाससे ढकी जमीनपर चलने लगी। एक पगडण्डी दिखायी दी और उसपर चलने लगी। कुछ दूर चलनेपर एक शहरका

परकोटा दिखायी दिया और यह पगडण्डी उस परकोटाके दरवाजेकी ओर जाती दिखायी दी। दरवाजा भी दिखायी दिया। बहुत भूख होनेके कारण कुछ खानेके अभिप्रायसे मैं आगे बढ़ी, पर साथ ही विचार आया कि 'पैसे तो पास हैं नहीं, कोई कैसे देगा, खैर, किसीसे माँगकर ही थोड़ा खाऊँगी। परंतु बड़े घरकी स्त्री होकर कैसे माँगूँगी। माँगा तो नहीं जायगा।' इस उधेड़-बुनमें चली जा रही थी कि अचानक रास्तेके बीच दो साधु एक सिंहको साथ लिये आकर खड़े हो गये। मैं सिंहको देखकर डर गयी और ठिठककर खड़ी रह गयी। श्याममूर्तिने मुसकराते हुए कहा—'डरै मत, यह सिंह हमारा पालतू है, खायेगा नहीं। तू कहाँ जा रही है?' मैंने प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा—'मैं दो महीनेसे बीमार थी, मुझे डॉक्टरोंने कुछ खानेको नहीं दिया, सो महाराज! मैं बहुत भूखी हूँ। इस शहरमें जाकर कुछ खाऊँगी।' श्यामवर्ण महात्माने कहा—'यह तो धर्मराजकी पुरी है। वह देख वह पुरद्वारपर बैठे वयोवृद्ध सफेद दाढ़ीवाले धर्मराज हैं। परंतु तुझे अभी वहाँ नहीं जाना है। तेरे बालक अभी छोटे-छोटे हैं, जबतक वे बड़े न हो जायँ तुझे वापस जाना है।' मैंने कहा—'महाराज! मैं तो दो महीनेसे १००-१०० दस्त रोज होनेसे बहुत दुःखी हो गयी हूँ। मैं अब वापस नहीं जाऊँगी।' श्यामवर्ण महात्माने फिर कहा—'तेरे बालक अभी छोटे हैं और तेरा समय भी अभी नहीं आया है। तू जा, तुझे अब दस्तोंकी बीमारी नहीं होगी और समयपर तेरी सहज मृत्यु होगी। तू हठ मत कर, तू जानती है हम कौन हैं?' मैंने कहा—'महाराज! मैं तो नहीं जानती।' दूसरे महात्माने कहा—'ये तो श्रीकृष्ण हैं और मैं अर्जुन हूँ।' इतना

कहते ही वे दोनों आँखोंसे ओझल हो गये और मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं नीचे गिर रही हूँ। आँखें खुलीं तो आप सामने दिखायी दीं। दर्शनोंसे वंचित होनेके कारण मैंने पूछा था कि 'वह कहाँ गये?'

तबसे उन्हें दस्तोंका रोग आजीवन नहीं हुआ। इस घटनाके समय मैं कोई पाँच वर्षका था, परंतु मेरी माताकी मृत्यु होना तथा पुनः जीवित होना साफ-साफ याद है। यह घटना मेरी दादी भी हमें कथाके रूपमें कहा करती थी और मेरी माताजी भी जब हम कौतूहलपूर्वक पूछते तो कहा करती थी। इस घटनाके तीस वर्ष पीछे दो-तीन दिनके हलकेसे बुखार होनेपर बात करते-करते माताजीकी आँखें फिर गयीं और इहलीला समाप्त हुई। उनके पति, पुत्र, पुत्रवधू, पोते, पोती, पोतेकी बहू इत्यादि रो रहे थे—डॉक्टर कह रहे थे हार्ट फेल हो गया, परंतु भगवान् अपना वरदान सफल कर मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। ये राजस्थानके प्रसिद्ध वीर देशभक्त तथा भगवद्भक्त श्रीरामगोपाल-सिंहजी* खरवा जिला अजमेरकी छोटी बहन थीं और खंडेला (जयपुर)-के राजा सज्जनसिंहजीकी धर्मपत्नी थीं—बोलो श्रीराधाकृष्णकी जय!

—श्रीजैतसिंह खंडेलावाला

---

* खरवाके रावसाहब श्रीगोपालसिंहजी बड़े भक्त थे। उनकी मृत्यु भी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करते-करते हुई थी। उस समयके 'कल्याण' में पं० झाबरमल्लजी शर्माद्वारा लिखित उनकी सफल मृत्युका पुण्य विवरण छपा था।—सम्पादक

मानवता

एस्० एस्० सी० का रिजल्ट निकला। उस दिन हाथमें एक छोटी-सी कागजकी पुर्जी लिये वह ट्रक-ड्राइवर मेरे पास आया और बोला—'भाई! जरा यह नम्बर तो देख दो।'

मैंने पुर्जीमें लिखा नम्बर पढ़ा और राजकोट केन्द्र देखा। अखबारके पन्ने उलटकर नम्बर खोजने लगा। वह ट्रक-ड्राइवर बड़ी उत्सुक दृष्टिसे अपलक मेरी ओर देख रहा था। मैंने उसको देखा और पूछ बैठा—'किसका नम्बर है?'

आतुरता नहीं रोक सकता हो—इस भावसे उसने कहा—'तुम पहले नम्बर देख दो, पीछे मैं सब बताता हूँ।'

मैं इस ट्रक-ड्राइवरसे परिचित हूँ, यह मुझको जानता है। हम दोनों एक ही गाँवके निवासी हैं। मैंने पढ़कर डाक-विभागमें नौकरी कर ली और इसने कुछ बड़े होनेपर जिम्मेदारीका खयाल आनेसे किसी प्राइवेट ट्रक-कम्पनीमें काम करना शुरू कर दिया। अकेला फक्कड़ है, न कोई आगे न पीछे। खाता-पीता है और जितना कमाता है, उतनेमें मौजसे जिन्दगी बिताता है।

वह बहुत खुश था, उसके चेहरेपर मनके आनन्दकी रेखाएँ स्पष्ट दीख रही थीं। उसने मुझे जो नम्बर बताया था, वह नम्बर एस्० एस्० सी० की परीक्षामें उत्तीर्ण छपा था। मैंने उससे कहा कि 'वह उत्तीर्ण हो गया है'—सुनते ही उसने गद्‌गद होकर कहा—

'आखिर प्रभुने उसकी ओर कृपादृष्टि की तो सही भाई!' और उसकी आँखें डबडबा आयीं।

'तू किसकी बात कर रहा है ड्राइवर?' मैंने पूछा। और वह भूतकालको याद करके कहने लगा—'चार वर्ष पहले एक दुर्घटनाका

केस हुआ था न? उस दुर्घटनाके मामलेमें मैं निर्दोष छूट गया था भाई! परंतु मुझको उसी समय यह मालूम हो गया था कि जो आदमी उस दुर्घटनामें मारा गया था, वह बेचारा एक मिलमें मजदूरी करके मुश्किलसे अपना गुजरान चलाता था। उसकी साइकिल ताँगे और ट्रकके बीचमें आ गयी थी—इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी। इस मामलेमें मैं निर्दोष छूट गया था, पर जब मुझे यह पता लगा कि इसका एक लड़का अंग्रेजी तीसरेमें पास होकर चौथे दर्जेमें आया है और अब उसे पढ़ाई छोड़कर मजदूरीमें लगना पड़ेगा, तब ईश्वरने स्वाभाविक ही मेरे मनमें उसकी मदद करनेकी प्रेरणा की······उजले रंगका वह लड़का था, पर पढ़नेमें बहुत तेज नहीं था, अतएव उसे कहींसे फीसके पैसे मिल जायँ या फीस माफ हो जाय—इसकी सम्भावना नहीं थी। मेरे मनमें आया कि जिसके कोई नहीं है, उसका यह ट्रक-ड्राइवर है।'

मैंने उस लड़केसे कहा—'भाई! तू निश्चिन्त होकर पढ़!····तुझे फीस, पुस्तकें मैं दूँगा, यों चार वर्ष सुख-दुःखसे निकल जायँगे,······उसकी माँ इधर-उधर दल-पीसकर पेट भरती है। भाई! आज मेरी खुशीका पार नहीं है। मेरा मनोरथ सफल हो गया, क्योंकि वह पास हो गया····' इतना कहकर कुछ क्षणोंके लिये वह ट्रक-ड्राइवर कुछ गहरे विचारमें डूब गया! फिर बोला······'यह सब ईश्वरकी लीला है भाई! नहीं तो कहाँ मैं, कहाँ दुर्घटनामें मारा गया मिल-मजदूर और कहाँ उसका यह मैट्रिकमें पास होनेवाला बच्चा! निमित्तकी बड़ी बात है भाई······' (अखण्ड आनन्द)

—'स्नेहाब्धि'

बच्चीकी बातका असर

मैं सिगरेटका शिकार हो चुका था। मेरे घरके सब लोग मुझे इस आदतको छुड़ानेके लिये लाख-लाख प्रयत्न करते रहे, पर मैं टस-से-मस नहीं हुआ। मेरी पत्नीतक भी हार गयी। मेरे मित्र भी हार गये, पर मेरा दिल न पिघला। मैंने यह बुरा व्यसन नहीं छोड़ा।

एक दिन मैं संध्याके समय बैठकमें बैठा चुपचाप सिगरेट पी रहा था कि अचानक मेरी लड़की लज्जा कमरेमें आ गयी और मेरी गोदमें बैठकर मेरे गालोंको सहलाती हुई बोली—'पिताजी! आप सिगरेट क्यों पीते हैं? मास्टरानीजीने मुझे पढ़ाया है कि जो लोग सिगरेट पीते हैं वे जल्दी मर जाते हैं। आप भी जल्दी मर जायँगे, पिताजी! आप न पीजिये न।' इतना कहकर वह रोने लगी। मैं अपने आँसुओंको थामे रहा और उसको प्यार करते हुए मैंने कहा—'बेटा! मैं अबसे सिगरेट नहीं पीऊँगा।' यह सुनकर वह प्रसन्न हो एकदम अपनी माँके पास गयी। मैं प्रभुको धन्यवाद देने लगा कि 'हे प्रभु! तेरे बच्चे क्या नहीं कर सकते। तू कितना अद्‌भुत है। तेरी गति कौन जानता है।' तबसे अबतक बहुत साल बीत गये हैं, आज मेरी बेटी काफी बड़ी हो चुकी है। जब मैं उसे देखता हूँ तो मनमें कहता हूँ कि 'हे प्रभु! तू कितना दयालु है।'*

—श्रीओमप्रकाश गंडा

---

* भारतमें गत वर्ष ३,२०० करोड़ सिगरेट बनी है। जब कि सन् १९५२-५३ में केवल १,८०० करोड़ ही बनी थी। खेदकी बात है कि तम्बाकूका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इसमें कोई लाभ तो है ही नहीं वरन् इस युगके वैज्ञानिकोंने तम्बाकूमें छः प्रकारके विषोंका पता लगाया है—(१) निकोटीन, (२) प्रेसिक एसिड,

भूलका प्रायश्चित्त तथा शुद्ध बुद्धिके विचार

मेरे प्रवासस्थित ग्राममें एक व्यक्ति रहता है, जो शिक्षित न होनेपर भी बुद्धिमान् है, किन्तु पहले उसकी सारी बुद्धिमत्ता अपकर्मोंकी ओर ही उसे प्रोत्साहित कर रही थी। लगभग बीस वर्ष पहले उसके निकट ग्रामका एक सनकी-सा ब्राह्मण अपनी बहिनके यहाँ जा रहा था। मार्गमें इस व्यक्तिसे उस ब्राह्मणकी भेंट हुई। ब्राह्मणने अपने नवजात भानजेको देनेके लिये एक चाँदीके रुपयेकी अत्यन्त आवश्यकता बतायी। उस समय चाँदीके रुपयोंका प्राय: अभाव हो चला था। ब्राह्मणने अपने हाथकी सोनेकी अँगूठी इस व्यक्तिको दी और कहा कि 'इसे कहीं बन्धक रखकर मुझे एक चाँदीका रुपया ला दो।' इसने वैसा ही कर दिया।

कुछ दिनोंके बाद उक्त ब्राह्मणके पिताने रुपया वापस देकर अपनी अँगूठी माँगी, किन्तु इसके मनमें लोभ हो गया था।

---

(३) पाइरीडीन, (४) कोलीडीन, (५) एमोनिया और (६) कार्बन मोनो आक्साइड। और भी बहुत-से विष हैं। सब विषोंकी संख्या १८ तक हो चुकी है। आजके वैज्ञानिक एक पाउण्ड तम्बाकूमेंसे इतना विष निकालते हैं, जिससे ३०० मनुष्योंकी मृत्यु हो सकती है। भाँति-भाँतिके रोग तो तम्बाकूसे होते ही हैं। इस व्यर्थकी ही नहीं, सर्वथा हानिकर वस्तुकी भारतमें ९ लाख एकड़ जमीनमें खेती होती है और ७० करोड़ पाउण्डकी उपज होती है। इससे किसानोंको प्रतिवर्ष १५ करोड़, सरकारको तम्बाकूके निर्यातसे १५ करोड़की विदेशी मुद्रा तथा कर आदिसे ५० करोड़ रुपयेकी आमदनी होती है। यहाँकी उपजी तम्बाकू ८० प्रतिशत यहीं खप जाती है। बड़े-बड़े समझदार इस विष-सेवन तथा विष-प्रचारमें लगे हैं। इस दुर्व्यसनके साथ ही चाय, अण्डे, शराब, सिनेमा आदिके दुर्व्यसन भी बढ़ रहे हैं। देशका दुर्भाग्य है।

—सम्पादक

अत: यह तरह-तरहकी आनाकानी करने लगा। बात जब कुछ आगे बढ़ी तब इसने एक नकली (पीतलकी) अँगूठी दिखाकर असली अँगूठी पचा ली।

दस वर्षोंसे मुझे भी कृषि-कार्यके लिये उसी ग्राममें जाकर रहना पड़ रहा है। इस बीचमें एक बार उसने लौरिया चीनी मिलमें काम करने (स्थान पाने)-के लिये मुझसे कुछ सहायता चाही। ईश्वरकी कृपा कहिये, संयोग बैठ गया; एक उच्च पदस्थ तथा निकट सरोकारीका सिफारिसी पत्र केन-मैनेजरके पास़ पहुँच गया। इससे मुझे भी पूर्ण विश्वास हो गया कि अब इसे काम अवश्य मिल जायगा। किन्तु काम मिला नहीं।

कारणोंका अन्वेषण करते हुए मेरे मनमें यही बात बैठ गयी कि इसने जो उस ब्राह्मणकी अँगूठी अनुचित रीतिसे (विश्वासघात करके) हड़प ली है, वही स्वर्णस्तेय इसे दरिद्रतासे मुक्त नहीं होने देता। मैंने यह बात स्पष्ट शब्दोंमें उससे कही भी तथा उसने भी अपनी भूलको स्वीकार की; किन्तु उसके प्रतीकारकी कोई बात नहीं की।

इधर इसे किसी तरह नहर-विभागमें काम मिल गया था; किन्तु थोड़े ही दिनोंमें अपने असदाचरणके कारण इसे वहाँसे भी हट जाना पड़ा।

बहुत दिन पहले मेरे एक सम्बन्धी व्यक्तिने मेरे ही यहाँसे कुछ स्वर्ण-भूषण चुरा लिये थे। प्रसंगवश उसीकी चर्चा करते हुए एक दिन मैंने उसके सामने ही कहा कि 'सोना चुराना पंच महापातकोंमेंसे एक बड़ा भारी पाप है।' ईश्वरकी कृपासे बात उसके मनमें बैठ गयी। सुधरी बुद्धिने यथाशक्य प्रायश्चित्तकी उचित युक्ति सोची। कुछ दिनों बाद उसने आकर मुझसे कहा— 'बाबू! मुझसे बड़ी भूल हो गयी है। अब मैं उस ब्राह्मणकी

सोनेकी अँगूठी वापस कर देना चाहता हूँ।' मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने उसके विचारकी प्रशंसा करते हुए जिज्ञासा की—'क्या अभी वह अँगूठी वर्तमान है?' उसने अँगूठी लाकर दिखायी। मैंने भी वापस देनेकी पूरी प्रेरणा दी।

तबसे उस ब्राह्मणके गाँवके जिस-जिस व्यक्तिसे उसकी भेंट हुई, उस-उससे उसने संवाद भेजा कि पाँड़ेजी आकर अपनी अँगूठी ले जायँ। पाँड़ेजीके आनेमें कुछ विलम्ब हुआ। उसे कहीं बाहर जाना था। उसने अँगूठी मुझे देकर कहा—'पाँड़ेजी कल आनेवाले हैं। उनसे पाँच रुपये या वे जो भी दें उसे ही लेकर यह अँगूठी उन्हें दे दीजियेगा।' पाँड़ेजी तो सनकी ही ठहरे, काहेको आते? उनके छोटे भाई दो-तीन व्यक्तियोंके साथ आये। मैंने रुपयेकी बात उठायी तो उनके पास दो रुपये थे, सो उन्होंने दे दिये। मैंने बहुतोंके सामने अँगूठी उन्हें दे दी। सबोंने आश्चर्य प्रकट किया तथा धन्य-धन्य कहा। उसी समय कहींसे घूमते-फिरते मुखियाजी भी वहीं आ गये और उन्होंने इस कार्यकी प्रशंसा की।

इधर उसी व्यक्तिपर बेमतलब किसीको मारनेका केस हो गया था। सजा होनेकी सम्भावना तो नहीं, किन्तु उस गरीबके कुछ रुपये व्यर्थ खर्च हो रहे थे। इसपर मैंने एक दिन कुछ खेद प्रकट किया तो उसने हँसकर कहा कि 'अच्छा होता है बाबू! मेरे अनुचित कमाये पैसे ही तो इस तरह निकल रहे हैं।' मैंने मन-ही-मन सोचा—'बुद्धि शुद्ध होनेपर ऐसे ही विचार होते हैं।'

—नन्दकिशोर झा

महात्माके लिये सरयूकी कृपा

भले ही अपनी अज्ञानताके कारण आजकी प्रगतिशील दुनियाका ज्ञानवान् कहलानेवाला मानव भगवान्के '**अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने**' इत्यादिके सिद्धान्तपर विश्वास न करे, इससे उस अनन्त लीलामय और कृपासागर प्रभुका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। फिर भी कभी-कभी वह हमारे ही सम्मुख ऐसे अद्‌भुत चमत्कार कर दिखाता है, जिसकी कल्पना ही हमारे मन, बुद्धि और कर्मसे परे होती है।

अल्मोड़ा जनपदकी नदी सरयूके सम्बन्धमें किसीने कहा—'गंगा मरे हुओंको तारती है, पर सरयू जीवित लोगोंके ही शान्तिका पथ प्रशस्त कर देती है।'

इसके अनुसार सरयूके गुणोंका परिचय भी बहुत लोगोंको होता रहता है। इस नदीके चमत्कार यदा-कदा इस क्षेत्रके लोगोंको आश्चर्यचकित कर ही देते हैं। सम्भवतः ऐसी घटनाओंके कारण, इसके प्रति इस पर्वतीय प्रदेशके भोले लोगोंका विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व वर्षा-ऋतुमें यहाँ एक भयावह दुर्घटना हुई थी। इस जनपदके मल्ला दानपुर लोहारखेत गाँवकी यह करुण कहानी है।

इस गाँवके एक उच्च स्थानपर एक पहाड़ीके नीचे एक महात्माकी कुटी थी। वह महात्मा पिछले कुछ वर्षोंसे उस कुटियामें रहकर देवाधिदेव भगवान् शंकरकी अर्चनामें लीन था। पासके गाँवसे उसे जो कुछ भी प्राप्त होता, उसीमें संतुष्ट रह, प्रतिदिन सरयूमें स्नान कर, एकान्तमें प्रभु-चिन्तनद्वारा सम्भवतः

अपने पूर्व-जन्मके पापोंका प्रायश्चित्त और इस जन्ममें पुण्योंका संचय कर रहा था।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके दिन सरयूमें स्नान कर, पूजा-पाठसे निवृत्त हो, एकान्तमें वह मन-ही-मन उस कृपामय प्रभुका चिन्तन कर ही रहा था कि एकाएक एक महिला उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसके अलौकिक और दिव्य रूप-लावण्यको देखकर महात्माकी आँखें चौंधिया गयीं।

वह महिला बोली—'तू किसकी आज्ञासे यहाँपर आसन जमाये बैठा है रे जोगी! भाग यहाँसे अभी अपनी झोली-चिमटा लेकर; उठ, अभी भाग जा, फौरन चला जा।'

महात्मा भक्त तो था, पर उसकी समझमें कुछ न आया और न वह यही समझ सका कि आखिर इस एकान्तमें इस महिलाका उसे इस प्रकार तंग करनेका प्रयोजन क्या है। आखिर मेरी फूसकी झोंपड़ीसे इसे क्या हानि हुई है। फिर भी शान्त होकर वह बोला—'माई! कुछ सुरम्य स्थान देखकर पिछले कुछ वर्षोंसे इस पहाड़ीके नीचे भगवान् शंकरसे अपने प्राकृत कर्मोंकी क्षमा-याचना कर रहा हूँ। मन, वाणी, कर्मसे किसीको कोई हानि न हो, ऐसा प्रयत्न करता हूँ। आप माँ हैं, आप ही बताइये, आज्ञा दीजिये, मैं कहाँ जाऊँ?'

'मेरा यह ठेका नहीं कि तुझे तेरे योग्य स्थान बताऊँ। पर चला जा अभी यहाँसे। अच्छा, देख मैं जाती हूँ, पर याद रख, यदि तू आजके सूर्यास्तसे पूर्व यहाँसे न भागा तो तेरी हड्डियोंको इस सरयूमें मछलियाँ चबायेंगी'—इतना कह वह महिला चली गयी।

महात्माको जैसे काठ मार गया। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया बेचारा। फिर भी यह देखता रहा, आखिर यह महिला कौन है

और जाती कहाँ है? उसने देखा कि पहाड़ीमें चलती हुई वह सरयूके किनारेतक गयी और एकाएक सरयूके उस अनन्त, अगाध और अथाह जलके मध्य विलीन हो गयी। वह साक्षात् माँ सरयू ही थी।

इधर महात्मा अपनी कुटियासे भगवान्‌की प्रतिमा, झोली, चिमटा और कमण्डलु लेकर चल पड़ा। जाते हुए गाँववालोंने उसे देख लिया और वे समझ न पाये कि वह कहाँ जा रहा है इस जन्माष्टमीके दिन।

पूछनेपर पता चला कि अब वह सदाके लिये यहाँसे चला जा रहा है। ऐसा समाचार सुनते ही सारे ग्रामवासी उसके पास आये और उन्होंने उससे प्रार्थना की—'महात्मन्! इतने दिन साथ रहे, अब हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं? कम-से-कम आज तो रह जाइये, आज श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी है। ऐसे पर्वपर हमें न छोड़िये।'

ग्रामवासियोंके आग्रहको देखकर महात्माने कहा—'यदि आपलोगोंकी ऐसी ही इच्छा है तो नीचेवाले गाँवमें रह जाऊँगा, यहाँ नहीं।'

गाँववालोंकी समझमें न आया, बेचारे उलटे आत्मग्लानिसे भर गये कि आखिर किसने महात्माका अपमान कर दिया, इन्हें किसकी कौन बात चुभ गयी?

पर महात्मा चले गये।

ठीक उसी रात क्या हुआ। तूफान, भयंकर आँधी, फिर मूसलाधार वर्षा और न मालूम क्या-क्या। ऊपरकी पहाड़ीमें एक दिव्य ज्योति, जैसे हजारों विद्युत्-बल्बोंका प्रकाश हो; गाँववालोंको दिखायी दी और उसीके साथ-साथ वह पहाड़ी भी नीचेकी ओर धँस गयी। एक पर्वतके ढह जानेसे सरयूका प्रवाह

भी रुक गया। सरयू पलट गयी और सारा गाँव ही सरयूके प्रवाह और उस पहाड़ीमें ही सदाके लिये विलीन हो गया। कितने ही मनुष्य, पशु, ढोर दब गये, बह गये और उस बवंडरमें समा गये। कितनोंके अंग-भंग हो गये, कितने उस दर्दनाक दृश्योंको ही देखकर बैठ गये। मनुष्य, पशु, सम्पत्ति किसकी कितनी हानि हुई, किसीको ठीक पता न चला। महात्माकी झोपड़ीका तो नाम-निशान भी न था। यहाँपर एक बस्ती थी, इसका कोई भी चिह्न अवशेष न रहा। जो था भी वह भयानक, दर्दनाक और करुणाकी सीमातक पहुँचा हुआ!

दूसरे दिन सबने देखा, कुछ दिनों बाद समाचारपत्रोंमें सबने पढ़ा। किसीने कहा—'इस धरतीके गर्भमें ज्वालामुखी है, यहाँकी मिट्टी ही ऐसी है जो एक-न-एक दिन अवश्य ही धँस जाती।' कोई बोले—'पहाड़ियोंके गाँवोंका कोई ठिकाना नहीं, कब बस जायँ और कब धँस जायँ।'

यह सब महात्माने भी देखा—कह नहीं सकते कि उसने क्या सोचा, पर उसी दिनसे उसने यह संकल्प कर लिया कि अब उसका जितना भी जीवन अवशेष रहेगा, यह इसी सरयू माँके किनारेपर रहेगा, भले ही कहीं रहे।

ऐसी बातें उस महात्मासे सबने सुनीं, पर कह नहीं सकता कि कितने लोगोंने इसपर विश्वास किया।

तबसे उस महात्माको आस-पासकी बस्तीमें किसीने नहीं देखा। हाँ, पिछले वर्ष सुननेमें आया कि एक महात्मा सरयूके किनारे कहीं एक पहाड़ीके नीचे बैठा था।

—देवेन्द्र कुमार गन्धर्व

गुप्त दान

कई वर्षों पहलेकी बात है। राजस्थानमें भीषण अकाल था। गौओंकी बड़ी दुर्दशा थी। उस समय गीताप्रेसकी ओरसे राजस्थानमें स्थान-स्थानपर सहायताका काम हो रहा था। रतनगढ़में भाईजी काम देख रहे थे। वे एक दिन दोपहरको अपनी बैठकमें अकेले बैठे डाक देख रहे थे कि वहींके एक सज्जन जो बहुत सम्पन्न थे, जिनका बंगालमें बड़ा कारोबार था, बड़े दानी थे, पर जो अपने लिये व्यय करनेमें बड़े ही अनुदार थे, घुटनोंतकको धोती, एक कमरी तथा सिरपर पगड़ी, जाड़ेमें एक बीकानेरी कम्बल—यही उनकी पोशाक थी। वे रिश्तेमें भाईजीके मामा लगते थे—आये, भाईजीने प्रणाम करके आनेका कारण पूछा। उनके हाथमें एक कागजका छोटा-सा पुलिंदा था, उसे भाईजीके हाथमें देते हुए बोले—'ले भैया! ये दस हजार रुपयेके नोट हैं। इस समय तू अकेला मिलेगा, इसीसे दुपहरीमें आया हूँ, इनको गायोंकी सेवामें लगा देना। पर देखना, कहीं ······का नाम न आने पाये। भगवान्‌की चीज भगवान्‌की सेवामें लगे, इसमें देनेवाले किसी दूसरेका नाम क्यों आना चाहिये?' भाईजीने मुसकराते हुए नोट ले लिये। वे जानते थे मामाजीकी गुप्त दान-क्रियाको। भाईजीने पीछे बताया कि इस प्रकार प्रचुर धनका ये दान करते हैं। जगह-जगह कुएँ-तालाबोंकी मरम्मत कराते हैं, नये भी बनवाते हैं, पर इनके नामकी जानकारी केवल वहीं होती है, जहाँ बिना नाम बताये काम चलता नहीं। आजके दानके नामपर इन्वेस्टमेंट करनेवाले—और दानसे पहले ही समाचारपत्रोंमें समाचार भेज देनेवाले दानी महोदय इससे शिक्षा ग्रहण करें।

—एक जानकार

विचित्र सेवा

कुछ समय पहलेकी बात है। दिल्लीकी एक गरीब बस्तीमें भयानक आग लगी। बहुत नुकसान हुआ। पाँच हजार मनुष्य बिना घर-बारके हो गये और लगभग २० आदमी जल मरे। दुपहरको बारह बजे आग लगी थी, उस समय पुरुष तो अधिकांश कामसे बाहर गये हुए थे। एकके बाद एक घरोंमें आग फैलती गयी और देखते-ही-देखते बहुत-से घर खाक हो गये।

यों एक ओर अग्निका प्रकाण्ड ताण्डव हो रहा था, दूसरी ओर लगभग तीस वर्षकी एक स्त्री बहुत बड़ी बहादुरीका काम कर रही थी। उसके पड़ोसके घरके सब लोग बाहर गये हुए थे। आग वहाँ भी पहुँच गयी थी, इसी बीच वह स्त्री पड़ोसीके उस जलते घरमें कूदकर जा पहुँची और घरके कपड़े-लत्ते, बर्तन तथा अन्यान्य सामानोंको बाहर निकालती गयी। वहाँ इकट्ठे हुए लोगोंने पुकार-पुकारकर उसे समझाया कि 'देखो, उधर तुम्हारा घर आगकी लपेटमें आ गया है, जाकर जो कुछ बने सामान निकाल लो।' पर उसने किसीकी बात नहीं सुनी। वह निडर स्त्री अपने काममें लगी रही। जबतक उस घरका तमाम सामान निकाल न दिया, तबतक हटी नहीं। जलते घरमें आने-जानेसे उसके हाथ-पैर तथा बाल भी कई जगह जल गये, परंतु इसका कोई दुःख उसे नहीं था। वह अपना कर्तव्यपालन करके प्रसन्न थी।

कुछ ही देरमें वह पड़ोसके घरवाला आया। अपने सारे सामानको सही-सलामत पाकर उसके हर्षका पार न रहा। अगल-बगलवालोंने बताया कि तुम्हारे घरके सारे सामानको

बचानेवाली तो वह स्त्री है। तुरंत वह जाकर उस स्त्रीके पैरों पड़ गया और बोला कि 'बहन, यह तुमने क्या किया। अपने घरकी कुछ भी परवा न करके मेरा घर बचाया।' इसपर उस स्त्रीने शान्तिके साथ उत्तर दिया—'भाई! मैंने समझ-बूझकर ही यह सब किया है। अभी दस ही दिनके बाद तुम्हारी कन्याका विवाह होनेवाला है। लड़कीको देनेके लिये तुमने कितनी तकलीफें उठाकर सामान इकट्ठा किया था। ये सब चीजें आगमें जल जातीं तो तुम फिरसे इन्हें कहाँसे जुटा सकते। परिणामस्वरूप लड़कीका विवाह रुक जाता। मेरा घर जल गया तो कोई बात नहीं, मैं किसी भी झोपड़ीमें जा रहूँगी। पर तुम्हारी लड़कीका तो घर ही न बँधता।' यह सुनते ही उस भाईकी आँखें आँसू बहाने लगीं। उसके मुँहसे सहज ही निकला—'इस तपोभूमि भारतमें अब भी ऐसी देवियोंका अभाव नहीं है।' (अखण्ड आनन्द)

—जेठालाल कानजी शाह

सामूहिक प्रार्थना

कुछ वर्ष पहलेकी घटना है। मैं और श्रीसोमप्रकाश 'गौतम' पाठशालामें अपनी-अपनी कक्षाओंको पढ़ानेमें व्यस्त थे। अकस्मात् दोपहरके बाद लगभग डेढ़ बजे एक भैंस रस्सा तोड़कर हमारी पाठशालाकी ओर भागी-भागी आयी। उसके पीछे एक स्त्री 'पकड़ो-पकड़ो' पुकारती हुई दौड़ रही थी। मैंने भैंसका रस्सा पकड़ लिया और किसी कदर भैंसको रोक दिया, किन्तु मैं उसे बहुत देर थामे नहीं रख सका। भैंस मुझसे छूटकर भाग गयी; भैंसने अपनी गति और भी तीव्र कर दी। पास ही एक रोशनी देवी नामकी कन्या लगभग आठ वर्ष आयुकी अपनी तख्ती साफ करके आ रही थी। दुर्भाग्यसे भैंसका रस्सा कन्याके दायें पाँवमें फँस गया। कन्या गिर पड़ी और वह भैंसके साथ कँकरीले पत्थरों और काँटेदार झाड़ियोंपरसे घसिटती हुई लगभग एक सौ बीस गजकी दूरीतक चली गयी। कन्या बुरी तरह जख्मी हो गयी, उसे श्री 'गौतम' ने किसी प्रकार भैंसकी लपेटसे छुड़ाया। हमें उसके बचनेकी कोई आशा प्रतीत नहीं होती थी। कन्याको तुरन्त चिकित्सालय पहुँचानेकी व्यवस्था की गयी। मेरे नेत्रोंके सामने और मेरी ही पाठशालाके आँगनमें ही यह दुर्घटना घटी; मुझे यह सब देखकर अत्यन्त दुःख हुआ। मेरी प्रबल चाह थी, किसी प्रकार इस अभागी छात्राके प्राण बच जायँ। मुझे और तो कुछ नहीं सूझा! मैंने पाठन-कार्य बन्द कर दिया। पास ही पीपल और बरगदके वृक्ष थे, सब विद्यार्थियोंसे कहा कि 'आओ इन वृक्षोंकी परिक्रमा करें और भगवान्‌से

प्रार्थना करें कि रोशनीके प्राण बच जायँ, ईश्वर उसे जीवन-दान प्रदान करें।' मैं भी छात्र-छात्राओंके साथ परिक्रमामें सम्मिलित था। लगभग आध घण्टेतक सामूहिक प्रार्थनाका यह क्रम शान्त वातावरणमें चलता रहा। साढ़े चार बजे सायं श्री 'गौतमजी' ने हमें बताया कि 'कन्याको चेतना आ गयी है और उसने आँखें खोल दी हैं, दूध इत्यादि भी पी लिया है।' अबतक मेरे पास ग्रामके नर-नारियोंका जमघट हो चुका था। इस सूचनाको सुनकर हमारी प्रसन्नताका कोई पारावार न रहा। हम सब उस ईश्वरको लाख-लाख धन्यवाद देने लगे, जिस प्रभुने हमारी सामूहिक प्रार्थनाको इतना शीघ्र सुन लिया।

कन्या अब स्वस्थ है। मेरे विचारमें यदि ऐसी सामूहिक प्रार्थना की जायँ तो वे अपना तत्काल फल दिये बिना नहीं रह सकतीं। यह मैंने आज प्रत्यक्ष ही देख लिया है। धन्य है प्रभु तेरी लीला! केवल विश्वासकी आवश्यकता है, तर्ककी नहीं।

—ब्रजलाल 'निरंकुश'
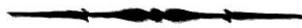
धोबीकी ईमानदारी

यह घटना कुछ साल पुरानी है। हमारे यहाँ एक धोबी कपड़े धोने आता था। वह धोबी बहुत पुराना था। एक दिन धोखेसे सोनेके बटन कमीजमें लगे रह गये। धोनेको दिये दूसरे सारे कपड़ोंके साथ वह कमीज भी धोबीको दे दी गयी। बटनोंकी कीमत लगभग २५० रुपये थी। शामको जब बटनोंकी आवश्यकता हुई, तब उनको ढूँढ़ा गया, परंतु बटन कहीं न मिले। हमलोग संतोष करके बैठ गये। किसीको यह खयाल ही नहीं था कि बटन कमीजके साथ धोबीके यहाँ चले गये।

अचानक दूसरे दिन वह धोबी दौड़ता हुआ आया और बटन देकर बोला—'बाबूजी! यह बटन आपकी कमीजमें लगे हुए थे। सँभाल लीजिये।' हमलोग धोबीकी इस ईमानदारीपर बहुत खुश हुए और उसको मैंने इनाम देना चाहा, परंतु उसने साफ इनकार कर दिया।

—विष्णु (कानपुरी)

भलेकी भलाई सबकी भलाई करती है

दो भाई थे, गोविन्दराम और लालचन्द! कपड़ेकी छोटी-सी दूकान थी देहातमें कलकत्तेके समीप। मजेमें कमाते-खाते थे। बीचमें दो-तीन बच्चोंके विवाह हुए, देश जाना-आना पड़ा। खर्च अधिक लग गया। पीछेसे काममें भी नुकसान हुआ। कुछ दिनों बाद दैवकी लीलासे गाँवमें बाढ़ आ गयी। लगभग पाँच-छः हजार रुपये गाँववालोंमें, जो लेने थे, वे डूब गये; क्योंकि बाढ़से गाँववाले तबाह हो चुके थे। कलकत्तेके महाजनके लगभग पन्द्रह हजार रुपये इन्हें देने थे। माल आता, रुपये जाते, तब तो काम चल रहा था; पर इधर रुपयोंकी टान होनेसे रुपये भेजे नहीं गये। माल भी नहीं मँगाया गया। काम ठप हो गया। कलकत्तेवाले महाजनने आकर देखा, दूकानमें माल नहीं है; न रुपये हैं, अतएव उसने इनको रुपयोंके लिये तंग करना शुरू किया। इन्होंने किसी प्रकार भी व्यवस्था करके रुपये चुकानेके लिये एक महीनेका वादा करके उसको लौट जानेके लिये कहा। वह विश्वास करके लौट गया। इनकी ईमानदारीपर उसे विश्वास था और बहुत पुराना व्यवहार था।

अब दोनों भाइयोंने विचार किया, पर मतभेद हो गया। लालचन्द कहता था कि 'स्त्रियोंका गहना तथा देशकी जमीन बेचकर रुपये चुका दिये जायँ तो महाजनको विश्वास हो जायगा। वह माल उधार देने लगेगा तो फिर कमा लेंगे।' पर गोविन्दरामका कहना था कि देशमें तो यह नालिश कर नहीं सकता; (क्योंकि उस समय राजस्थानमें राजाओंका राज्य था)

अतएव दूकान बन्द करके देश चले चलें। गहना तथा जमीन न बेची जाय। हाथसे यह सब निकल जायगा तो दरिद्र हो जायँगे। लालचन्द ईमानदारीपर दृढ़ था तो गोविन्दराम रुपये बचानेके लिये महाजनको चकमा देना चाहता था।

गोविन्दराम नहीं माना, तब लालचन्दने कहा—'भैया! तुम अपने हिस्सेका गहना तथा जमीन बचा लो। मैं तो महाजनको दूँगा ही।' गोविन्दरामने उसको समझाना चाहा, पर लालचन्द नहीं माना। इधर लालचन्दकी बात गोविन्दरामको नहीं जँची। लालचन्द कलकत्ते गया, सौभाग्यसे महाजनने इस शर्तपर और इस आशयकी एक चिट्ठी अपने नामसे लिख देनेपर कि 'रुपये कमानेपर फिर दे दिये जायँगे' आधी रकममें सलटा लिया। लालचन्दने अपने हिस्सेकी जमीन तथा अपनी स्त्रीका गहना बेचकर महाजनको आधी रकम देकर उससे चुकतेकी रसीद (फाड़खती) ले ली। उसने महाजनको यह नहीं बताया कि वह अकेला अपना गहना-जमीन बेचकर दे रहा है, गोविन्दराम कुछ नहीं दे रहा है। वह यह कहता तो महाजन मानता ही नहीं। अस्तु!

उसने आकर सब बात भाईसे कह दी। भाई प्रसन्न हो गया। उसका गहना बच गया और महाजन भी मान गया। लालचन्दका गहना-जमीन गये तो बलासे!

कहीं-कहीं कर्मफल हाथों-हाथ मिल जाया करता है या उसी प्रकारका प्रारब्ध सामने आ जाता है। लालचन्दकी सास कलकत्ते रहती थी। उसके एकमात्र लड़की (लालचन्दकी पत्नी रुक्मिणी)-के सिवा और कोई सन्तान नहीं थी। उसके लगभग साठ हजार रुपये, दस-बारह हजारका गहना और तीस-चालीस हजारकी

देशमें जमीन थी। वह अकस्मात् बीमार हुई। लालचन्द तथा उसकी पत्नी तो उसके मरण-समय नहीं पहुँच सके, पर वह मरते समय एक दस्तावेज (वसीयतनामा) बाकायदा अपने एक ईमानदार पढ़े-लिखे सम्बन्धीकी सलाहसे लिख गयी, जिसमें उसके द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति अपनी लड़की रुक्मिणीको दे दी गयी थी, सिर्फ पाँच हजार उसके खर्च (द्वादशाह—श्राद्ध) आदिमें लगानेकी हिदायत लालचन्दको दी गयी थी। यह रहस्य खुलनेपर सहज ही लालचन्द धनी हो गया। उधर भाई गोविन्दरामके मनमें बेईमानी आ गयी थी। अतः उसने अपने हिस्सेकी देशकी जमीन अपने एक सम्बन्धीके नाम बेची कर दी थी तथा गहना भी उसे दे दिया था। दुर्भाग्यसे वह घाटेमें था। गोविन्दरामको पता नहीं था। उसने गहना बेचकर रुपये बरत लिये तथा देशकी जमीनपर उसके किसी पावनेदारकी कुर्की आ गयी। यों गोविन्दराम फकीर हो गया। पर लालचन्दकी और उसकी स्त्रीकी सदाशयताने उसे अकिंचन—फकीर नहीं होने दिया। अपनी रकममेंसे उसको आधी पाँती उन्होंने दे दी। दोनों भाई पुनः सुखसे कारोबार करने लगे। भलेकी भलाई सबका सदा भला ही करती है।

—रतनलाल शर्मा

आँव (आमातिसार)-की अनुभूत दवा

कैसा भी आँव हो, (पेट कटना, मवाद-रक्त आना, बार-बार पाखाना होना) जिसे अंग्रेजीमें डिसेन्ट्री (Dysentry) कहते हैं, इससे आराम हो जाता है। यह मेरा २३-२४ वर्षका अनुभव है, पर इसका प्रयोग 'पैसा कमानेके लिये' बिलकुल नहीं करना चाहिये।

वह दवा है—जपा या जवापुष्प (जिसे इधर 'अड़हुल') कहते हैं, जिसका अंग्रेजी नाम China-Rose है, नामक लाल फूल जिसके द्वारा देवीजीकी पूजा विशेषरूपसे की जाती है। बारह वर्ष या इससे छोटी उम्रवाले रोगीको फूलका ऊपरका हरा छिलका छीलकर फेंक दे और भीतरका एक फूल या अवस्थानुसार उससे कम, चार आनेभर मिश्रीके साथ चबवा दिया जाय। बारह वर्षसे बड़ी उम्रवाला रोगी इसी प्रकार दो फूल चबा ले। यह खानेमें खराब नहीं लगता वरं स्वादिष्ट लगता है। दवा सुबह-शाम किसी भी समय दिनभरमें एक बार लेनी चाहिये। एक बारमें लाभ न हो तो एक या दो दिनतक एक-एक बार और भी लेनी चाहिये। पथ्यमें दही, चिउरा, चीनी एक-दो बार लेनेसे जल्दी लाभ होता है।

—हीराप्रसाद वर्मा

आदर्श सद्व्यवहार

(क)

बात सन् १९५९ की है, तारीख मुझे ठीक याद नहीं रही। उस समय मैं अपने चाचाजी श्रीमिश्रीलालजी जोशी, पोन्नेरी (जो मद्राससे २२ मीलकी दूरीपर है)-वालोंकी दूकानपर काम करता था। मेरे चाचाजी मिश्रीलालजी जोशीके प्रिय मित्र और हमारे जाति-भाई श्रीरामचन्द्रजी बोहरा मद्रास-निवासीका आपसमें रकमका लेन-देन था। इन दोनों सज्जनोंके खुदकी गहने (Pawn Brokers)-की दूकानें हैं। अतः इन्हें गहने पुनः बन्धक (Remortgage) रखकर साउथ इण्डियन बैंक, मद्रास (South Indian Bank, Madras) से कर्ज (Loan)-के तौरपर रकम लेनी पड़ती थी। भाई श्रीरामचन्द्रजी एक दिन चाचाजीको साथ लेकर बैंकको गये। उन्हें दस-बारह लोगोंको मिलाकर एक ही लोन बनाना था, साथ ही कुछ और गहना रखकर पाँच-छः हजार रुपये लेने थे। बैंककी लिखा-पढ़ीका सारा कार्य पूरा होते-होते शामके चार बज गये। सुबहसे आये हुए थे, कुछ ऊब-से गये थे। अतः ये लोग जल्दीमें ही कैश चैकपर हस्ताक्षर करके रुपये बिना लिये ही बैंकसे चल दिये। रुपये लेनेका इन्हें बिलकुल खयाल ही न रहा। शामके पाँच बजे बैंकके एजेंट श्रीकोलन्द स्वामीने हिसाब देखा तो रोकड़में पाँच हजार कुछ खुदरा रुपये ज्यादा थे। स्मरण करनेपर इन्हें भाई रामचन्द्रजीकी याद आयी जो चैकपर हस्ताक्षर करके बिना रुपये लिये ही चले गये थे।

एजेंट श्रीकोलन्द स्वामीने ५।३० बजेके करीब भाई साहबके पाँच हजार तथा कुछ खुदरे रुपये अपने लेदर बैगमें डाले और बैंक बन्द करके उनके घरपर जानेके लिये टैक्सीपर सवार हो गये और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। चाचाजी और भाई साहब इधर-उधर घूम-घामकर लगभग छः बजे अपने निवासस्थानपर कारसे उतरे। सामने एजेंट श्रीकोलन्द स्वामीको खड़े देख दोनों दंग रह गये। जब एजेंट महोदयने बैगसे निकालकर इनको रुपये दिये तब इन्हें अपनी भूलका स्मरण आया। चाचाजी और भाई साहब दोनों सड़ककी फुटपाथपर खड़े एजेंट साहबकी ओर अपलक देखते ही रह गये। एजेंट साहब वापस जानेके लिये टैक्सीपर सवार हुए, तब भाई साहबने कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें कुछ देनेके लिये हाथ बढ़ाया। मगर उन्होंने उसकी तरफ देखे बिना ही मि० रामचन्द्र! यह मेरा कर्तव्य था—कहकर टैक्सी-ड्राइवरको चलनेका आदेश दिया। टैक्सी नजरोंसे ओझल होनेतक ये दोनों आत्मविस्मृत-से वहीं खड़े रहे। महाशय कोलन्द स्वामी इस बैंकमें एक साधारण गुमाश्ताके तौरपर दाखिल हुए थे। उस समय इनका वेतन साठ रुपये था। अब आप हेड ऑफिसके एजेंटके पदपर हैं। इनकी सज्जनता, कार्य-दक्षता एवं सत्यपरायणताने इनको शिखरपर पहुँचा दिया है। इनके मधुर व्यवहारके कारण हर ग्राहक इनकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता।

(ख)

मेरे बहनोईजी श्रीशंकरलालजी उपाध्यायके द्वारा सुनी हुई यह बात है; अतः उन्हींके शब्दोंमें लिख रहा हूँ।

करीब कुछ वर्ष पूर्व मैं बम्बई ४६, प्रेमचन्द्र उम्मेदमल, लोकमान्य तिलकरोडपर स्थित कपड़ेकी दूकानपर था। वहाँ मैं १५ सालसे रहता आया हूँ। एक दिन दूकानपर ग्राहकोंकी भीड़ थी। रातके लगभग आठ बज चुके थे; फिर भी ग्राहकोंकी भीड़ होनेसे तीन-चार आदमी अलग-अलग ग्राहकोंको निपटाकर भेज रहे थे। इसी गड़बड़में गल्लेसे पैसे निकालते समय या पैसे डालते समय भूलसे किसीके द्वारा एक सौ रुपयेका नोट फूलोंकी टोकरीमें गिर गया। वह टोकरी एक (गरीब) फूल बेचनेवालेकी थी, जो दिनभर फूल बेचकर अपने पत्नी-बच्चोंका पालन करता था और रातको टोकरी हमारी दूकानमें रख जाया करता था। रातको १० बजे रोकड़ मिलाते समय सौ रुपये कम थे, सभी हैरान और दुःखी थे। मैं सबसे ज्यादा दुःखी था; क्योंकि गल्लेकी और दूकानकी सारी जिम्मेवारी मुझपर थी। सभी लोग एक-दूसरेपर सन्देहभरी दृष्टिसे देख रहे थे। रातके बारह बजेतक सारी छान-बीन की गयी, मगर मैं रुपये नहीं ढूँढ़ सका। आखिर मैंने हैरान होकर सबके सामने यह कहा कि 'सुबह नीबूपर काजल लगाकर मन्त्रद्वारा चोरका पता लगानेवाले ओझाकी सहायता लूँगा और सही चोरका पता लगाऊँगा।' मैं कह रहा था, पर मैं खुद काँप रहा था कि न मालूम क्या होगा। हालाकि मैंने नोट नहीं लिया, परंतु मेरी जिम्मेदारीमें हुई इस गलतीका मैं क्या जवाब दूँगा। मेरे सहज स्वच्छ और उज्ज्वल चरित्रपर धब्बा न लगने पाये—इसके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए ही मैंने सबको सोनेके लिये कह दिया और मैं खुद भी सो गया भगवान्‌का स्मरण करते-करते।

सुबह फूलवाला आया। टोकरीमेंसे कपड़ा और पत्ते निकालते समय सौ रुपयेका एक नोट भी पत्तोंके साथ बाहर पड़ा देख वह काँपने लगा। उस नोटको उठाकर वह मेरे पास आया और मुझे नोट दिखाते हुए बोला कि 'शायद यह नोट आपका है, मेरी टोकरीमें था।' हमलोग सब सन्न रह गये। हमें टोकरीमें रुपये गिरनेका बिलकुल ही खयाल नहीं था। वह चाहता तो सौ रुपये दबा सकता था, परन्तु वह ईमानदार था। मैंने उसे अपनी तरफसे पाँच रुपये देनेके लिये निकाले पर उसने नहीं लिये। सब लोग सजल नेत्रोंसे उसकी तरफ देखते ही रह गये और वह नीचे उतरकर वापस अपने काममें लग गया। अब वह हमारी दूकानकी पटरीपर नहीं है, फिर भी गल्ला खोलते ही मुझे उसकी याद आकर मेरी आँखें बरबस जल बरसाने लगती हैं। धन्य है वह, जिसने मुझपर और सबपर किये जानेवाले सन्देह और कलंकसे हमें बचाया।

—बं० मीठालाल जोशी, पोन्नेरी (जिला चेंगलपेट)

पंचामृतसे प्रेतको शान्ति

यह घटना कुछ वर्ष पुरानी है। उन दिनों मैं अपने परिवारके साथ एक कस्बेमें रहता था। पिताजीकी वहीं सर्विस थी। एक दिन हमारे दूरके रिश्तेके एक सम्बन्धीके यहाँ श्रीसत्यनारायणकी कथा थी। वे निकटके एक छोटे गाँवमें रहते थे, हमको भी उन्होंने कथामें सम्मिलित होनेके लिये निमन्त्रण भेजा था और आनेके लिये बहुत आग्रह भी किया था। अतः मैं और पिताजी वहाँ गये। माताजी और छोटे बच्चे घरपर रहे; क्योंकि उन दिनों माताजीकी तबीयत कुछ खराब थी और गाँव थोड़ा दूर भी था। कथा समाप्त होनेपर मैं और पिताजी वापिस घर लौटनेके लिये चले। रात्रिके बारह बजेका समय हो गया था। हमारा गाँव दो मील दूर था। मैं और पिताजी, हमारे साथ एक महाशय और थे। हम तीनों रवाना हुए। साथमें घरवालोंके लिये पंचामृत और कथाका प्रसाद भी ले लिया। पूर्णमासीकी चाँदनी रात थी। आधे रास्तेपर एक विशाल वटका वृक्ष था। ज्यों ही हम इस वट-वृक्षके पास पहुँचे, त्यों ही वृक्षके ऊपरसे आवाज आयी, 'ठहरो।' आवाज सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। पिताजीने पूछा, 'आप कौन हैं और क्या चाहते हैं?' उत्तर मिला, 'मैं प्रेत हूँ' मुझे इस योनिमें कई वर्ष व्यतीत हो गये हैं। पूर्वजन्मके पापोंके कारण घोर यन्त्रणाका अनुभव करता हूँ। अगर आप कृपा कर पंचामृतका पात्र वृक्षके नीचे रख देंगे तो मैं उसे ग्रहण करूँगा, इससे मुझे असीम शान्ति मिलेगी। आवाज भर्रायी हुई थी। हमने पात्र वृक्षके नीचे रख दिया और दूर खड़े हो गये।

थोड़ी देर बाद देखा कि उसमेंसे पंचामृत गायब था। फिर प्रेतकी कोई आवाज नहीं आयी और एक शीतल वायुका झोंका आया। हम अपने गाँव लौट आये।

इससे विदित होता है कि पवित्र जलसे प्रेतात्मातकको बहुत शान्ति और सुख मिलता है।

—श्याममनोहर व्यास, बी० एस्-सी०

सेवा-परायणता

मैं भी गाँवसे आया हूँ, तुमलोग भी गाँवसे आयी हो। तुम कुनबी हो, मैं सैंथवार हूँ।

यों पहली मुलाकातमें ही इन माँ-बेटीके साथ उस सैंथवार युवककी आत्मीयताके चिह्न प्रकट होने लगे। माँ-बेटी दोनों ही काठियावाड़के एक गाँवसे कमाने-खानेके लिये अहमदाबाद आयी थीं। यहाँ दोनोंको मजदूरी मिलने लगी। एक घर भाड़े लेकर ये सुखसे अपने दिन बिताने लगीं। माँको अब सिर्फ एक ही चिन्ता थी अपनी जवान बेटीकी । यह लड़की छोटी उम्रमें ही विधवा हो गयी थी। कोई सन्तान नहीं थी। इसी बीच तीस वर्षके उस जवान लड़केसे परिचय हो जानेपर माँने कहा—'भगवान्‌की दया हो गयी। जिसकी जरूरत थी, वह अपने-आप ही मिल गया।' इन लोगोंमें विधवा दूसरा घर कर सकती थी, यह प्रथा थी।

उस भाईकी भी यह धारणा हो गयी कि 'जो चाहिये था, वह मिल रहा है।' वह राशनिंगकी एक दूकानमें काम करता था। दूकानके मुख्य अधिकारीने भी इस दृष्टिसे समर्थन किया कि 'बेचारेका घर बँध जाय तो अच्छा है।'

असलमें यह भाई था उड़ाऊ; तभी तो गाँवकी जमीन तथा ढोर-ढार बेचकर शहरमें आया था। ऐसे उड़ाऊको लड़की कहाँ-से मिलती? इसीसे तीस वर्षकी उम्र तथा राशनिंगकी दूकानपर वेतन पानेवाला होनेपर भी उसे कोई लड़की नहीं मिली।

फिर तो 'गाँवमें जमीन है, मेरा काका उसकी व्यवस्था

करता है, मैं यहाँ सुखसे नौकरी करता हूँ।' उसकी इस प्रकारकी बातें सुनकर माँ-बेटीका मन इधर खिंच गया। राशनिंगकी दूकानवाला भी कहता—'यह बहुत अच्छा आदमी है।'

आखिर उसका सम्बन्ध उस लड़कीसे हो गया। पर सत्य कहाँतक छिपा रहता, उसकी सास तथा पत्नीको पक्का सन्देह हो गया कि इसने झूठी डींग मारी थी। उन्होंने कहा, 'चलो, अपने गाँव चलें।' वह चुप हो रहा और उसने अपने काकाको पहलेसे ही लिख दिया कि मैंने यह सब जंजाल रचा है, अब मेरी लाज बचाना तुम्हारे तथा गाँववालोंके हाथमें है।

परन्तु गाँव जानेपर काकाने उसको घरसे विदा कर दिया। इधर उस लड़कीकी माँ मर गयी। पर इससे वह लड़की घबरायी नहीं, उसकी हिम्मत बढ़ी और उसने अपने पतिसे कहा—'जरा भी चिन्ता मत करना।' दोनों गाँवमें रहे और मजदूरी करने लगे। लड़की घरका सारा काम चलाने लगी।

यों अहमदाबाद तथा पतिके गाँवपर लगभग डेढ़ वर्ष गृहस्थी चली। फिर पतिको बीमारीने घेर लिया। उसका सारा शरीर सूजकर खम्भा-सा हो गया। पर यह महान् स्त्री एक ओर मजदूरी करती रही और दूसरी ओर अखण्ड सेवामें लगी रही। गाँवके लोग इस बहिनके आचरणको देखकर दाँतों-तले अँगुली दबाकर दंग रह गये। गाँववालोंने अन्न-वस्त्र स्वीकार करनेका अनुरोध किया। परन्तु इस बहिनकी एक ही आवाज थी—'भगवान्‌ने मानव-शरीर दिया है। वह चल रहा है, फिर क्या चिन्ता है। मेरा भगवान् बड़ा दयालु है; मुझे कभी मुफ्तमें लेनेका दिन न दिखावे।' यों मीठे वचन तथा आत्म-गौरवसे वह बहिन सबके

हृदयपर विजय पाती रही।

सब मिलाकर दो ही वर्षका संग और उसमें छः महीनेका यह विचित्र रोगका समय बिताकर उस भाईने सदाके लिये विदा ले ली। उस बहिनने ऐसे पतिकी अर्धांगिनी बनकर अन्ततक जो एकनिष्ठ महान् सेवा की, वह सर्वथा प्रशंसाके योग्य थी।

पतिके जानेके बाद सन्तानहीन होनेपर भी उस बहिनने फिर घर करनेकी कल्पना ही मनमें नहीं आने दी। छोटेसे गाँवमें अकेली रहती हुई वह अपना सच्चरित्र तथा परिश्रमी जीवन आनन्दसे बिता रही है। (अखण्ड आनन्द)

—संत बाल

भगवान् जो करते हैं, सब मंगलके लिये करते हैं

उस समयतक मुझे अपनी योग्यता, कर्मठता और कार्यपटुताका घोर मद था। अधीनस्थों तथा सहयोगियोंसे मैं यह भावना यदा-कदा व्यक्त करता रहता था। इस मनोदशामें यदि मेरी पदोन्नति होती तो मेरा अहंकार और दर्प और बढ़ जाता। और हो सकता था मैं अपनी राहसे डिग जाता। परंतु भक्तवत्सल लीलाधारी प्रभुकी लीला अद्‌भुत और अपरम्पार है। जिस समय पदोन्नतिके लिये अन्य उम्मीदवारोंके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ, उस समय मैंने अपने मनमें अपनेको सर्वाधिक अनुभवी, सुयोग्य एवं निपुण समझा। मेरा अपना यह दृढ़ विश्वास था कि मैं अवश्यमेव पदोन्नति पाऊँगा। किन्तु जब परिणाम निकला तो उसमें मेरा नाम नहीं था। काटो तो खून नहीं! मैं बहुत ही निराश और मर्माहत हुआ। चतुर्दिक् मेरे इस पराभवकी चर्चा होने लगी, जिससे मुझे और ठेस लगती थी। मैंने अपने मनमें बहुत ही बुरा माना; किन्तु प्रभुके छद्म-मंगलविधानको कौन परख सकता है। ऐसे अवसरपर करुणामय भगवान्‌के सिवा कहाँ सहारा मिल सकता था! मुझमें स्वभावतः दीनता और ईशपरायणता शनैः-शनैः आने लगी। भगवद्भजन और सत्य कार्यमें मेरी अभिरुचि बढ़ी। मैं अधिक सात्त्विकता और ईमानदारीसे काम करने लगा। करीब दस महीनेके बाद मैंने पहलेसे एक बड़े तथा ऊँचे ऐसे पदके लिये अन्यमनस्क तथा उदासीन भावसे आवेदन कर दिया। जो पहलेके पदसे कहीं ऊँचा और अधिक प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण

था। आवेदकोंकी संख्या हजारसे ऊपर थी तथा नियुक्तिकी संख्या केवल १२ थी। साक्षात्कार आदिके उपरान्त तनिक भी आशा नहीं थी कि मुझे वह पद मिल सकेगा। निर्वाचनका परिणाम निकला, जिसमें मेरा तीसरा स्थान आया। मेरी नियुक्ति हो गयी। मुझे आशातीत उच्चतर पद प्राप्त हुआ। मेरे लड़केको मैट्रिक परीक्षामें उसी तरहका उत्कृष्ट परिणाम आया। तबसे यह मालूम हो रहा है कि मैंने प्रभुकी अहैतुकी कृपाका प्रसाद पाया है। भगवान् जो करते हैं, मंगलके लिये ही करते हैं। मेरी पहली अग्नि-परीक्षा न होती तो मैं आज इतना संयत और जाग्रत् नहीं हो पाता।

—विश्वनाथसिंह, एम्० ए०, साहित्यरत्न

धन पराव बिष तें बिष भारी

घटना उन दिनोंकी है, जब स्वतन्त्रताके साथ ही देशके दो टुकड़े भी कर दिये गये। मैं उस समय एक राजकीय अधिकारीके रूपमें शिमलामें फागलीमें रहा करता था। हमारे ब्लाकमें छः परिवार रहते थे जिनमें एक मुस्लिम-परिवार भी था। देश-विभाजनकी घोषणा होते-न-होते जब जाति-विद्वेषकी ज्वाला भभक उठी तो इस मुस्लिम-परिवारको भी अपने प्राण-रक्षार्थ राजकीय शिविरमें शरण लेनी पड़ी। ये केवल कुछ आभूषण ही साथ ले जा सके, शेष बहुमूल्य सामान घरमें ही बंद कर गये। उनके जाते ही घरकी बारहबाट आरम्भ हो गयी। मेरे एक परिचितने भी खूब चाँदी की। सौभाग्यवश मैं इस दुष्कार्यसे दूर ही रहा।

एक दिन मेरे एक पंजाबी मित्र मेरे घर आये और मुझे एक बड़ा और सुन्दर लोटा देते हुए बोले कि यह लोटा उस मुस्लिम-परिवारका है और मुझसे अनुरोध करने लगे कि मैं इस लोटेको उक्त मुस्लिम-परिवारके पास पहुँचा दूँ। मैंने उन्हें ऐसा करनेका आश्वासन तो दे दिया, परन्तु पहले तो उपद्रवोंके कारण और फिर बादमें दिल्लीको स्थानान्तरण हो जानेसे मैं लोटा उन्हें दे न सका। फिर मनमें आया कि अब तो वह मुस्लिम-परिवार पाकिस्तान पहुँच गया होगा, अब कौन उसे लोटा भेजे और अब इसका तकाजा ही कौन करेगा।

दिल्ली आनेपर मुझे एक मित्रके घर रहना पड़ा। वहाँ कुछ ही दिनों पश्चात् वह लोटा भी चोरी हो गया और साथमें मेरा कुछ और सामान भी। मनमें तुरन्त विचार आया कि भगवान्‌ने अनुचितरूपसे अर्जित वस्तु ब्याजसहित वापस ले ली है। इधर

उन मेरे परिचित महोदयको भी, जिन्होंने लूटके मालसे अपना घर भरा था, भारी हानि उठानी पड़ी। उन्होंने विदेश जाकर बहुत कमाया और वे उसे भारतस्थित अपने निकट सम्बन्धियोंको भेजते रहे। परंतु जब वापस आये तो उन लोगोंने कुछ भी नहीं लौटाया। बेचारे अत्यन्त दुःखी हुए।

एक और घटना भी मुझे स्मरण हो आयी। देश-विभाजनके समय ही एक मुसलमान अधिकारीने मुझसे सौ रुपये उधार लिये और मुझे इतनेका ही चेक दे दिया। चेक ले तो लिया परंतु मुझे चेकपर विश्वास नहीं हुआ। मैंने एक अन्य मुसलमान क्लर्कसे कहा कि वह मुझे सौ रुपये दे दे और पाकिस्तान पहुँचकर उक्त अफसरसे ले ले। वह मान गया। चेक मैंने बैंकमें दे दिया था। तीन-चार वर्ष पश्चात् वह चेक भी स्वीकृत हो गया और मुझे बैंकसे भी रुपये मिल गये। मानव-स्वभाव! मैंने रुपये लौटानेका कोई प्रयत्न न किया। कुछ तो आलस्य और कुछ इसलिये कि रुपया एक पाकिस्तानीका था। तीन वर्ष पूर्व यात्रा करते हुए मेरा एक बक्स चोरी हो गया। बक्समें सौ रुपये नगद और कपड़े इत्यादि थे।

इन दो घटनाओंके पश्चात् मेरा यह अटल विश्वास हो गया है कि अनुचित रूपसे अर्जित धन अधिक दिनोंतक नहीं टिकता। ब्याजसहित वापस चला जाता है। आज भी मैं भगवान्‌को धन्यवाद देता हूँ कि मैंने अपने घरमें लूटका माल एकत्र नहीं किया। नहीं तो, न जाने मेरी क्या दुर्दशा होती। आशा है कि मेरे मित्र-बन्धु मेरे इन अनुभवोंसे लाभान्वित होंगे।

—राजकिशोर शर्मा

सद्‌गुणवती बहू

पूर्वबंगालके एक गाँवमें हाराणचन्द्र चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनके पुत्रका नाम था अनुकूलचन्द्र। हाराणबाबू संस्कृतके विद्वान् थे, थोड़ी अंग्रेजी जानते थे। पर अंग्रेजी शासनमें अच्छी चाकरी (नौकरी) पानेके लिये अंग्रेजीकी आवश्यकता समझकर उन्होंने पुत्र अनुकूलचन्द्रको अंग्रेजी पढ़ायी। वह पहले स्कूलमें पढ़ता था। फिर ढाकामें जाकर उसने एम्० ए० तक कर लिया। हाराणबाबूकी जान-पहचान काफी थी। अतः कुछ प्रयत्न तथा सिफारिशसे अनुकूलचन्द्रको अच्छी सरकारी नौकरी मिल गयी। पढ़े-लिखे सरकारी नौकरके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये चारों ओरसे कन्यावालोंकी माँग आने लगी। आखिर एक उच्च कुलके किन्तु निर्धन पिताकी कन्याके साथ शुभगुणसम्पन्न उदार हृदयके श्रीहाराणचन्द्रने अपने पुत्रका विवाह कर दिया। बहू शशिबाला बड़ी सुन्दर, सुशीला, बुद्धिमती, विनम्र स्वभावकी और सेवाभाव-परायण आयी। इससे हाराणचन्द्र बहुत प्रसन्न थे। अनुकूलचन्द्रको तो मानो परम सुखमय अत्यन्त दुर्लभ अमूल्य रत्न ही मिल गया। उसके मनमें बड़ा आह्लाद था ऐसी रूपगुणवती पत्नीको पाकर। पर अनुकूलचन्द्रकी माता मृणालिनीको सन्तोष नहीं था। वह कुछ लोभी स्वभावकी थी। उसने अपने पढ़े-लिखे सरकारी चाकरीमें लगे हुए गुणी पुत्रके विवाहमें बहुत बड़े दहेजकी आशा कर रखी थी और लोग देनेको तैयार भी थे; परंतु हाराणचन्द्रने केवल गुणवती लड़की देखी, दहेजको ठुकरा दिया और पत्नीकी पूरी सम्मति न होनेपर भी उससे अनुकूलचन्द्रका

विवाह कर दिया। मृणालिनीने समझा था कि दहेजमें कुछ तो आयेगा ही, पर शशिबालाके कुलशीलसम्पन्न विद्वान् पिता ऋण लेकर या घर-द्वार बेचकर दहेज दें—यह हाराणचन्द्रको सर्वथा अस्वीकार था, इसलिये कन्याके पिताके आग्रह करनेपर भी उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। इससे मृणालिनीका क्षोभ और भी बढ़ गया। कुछ दिन तो ठीक चला। फिर मनका क्षोभ बाहर प्रकट होने लगा और वह शशिबालाके प्रति दुर्व्यवहार, उसके माता-पिताके लिये दुर्वचनके रूपमें उत्तरोत्तर क्रमशः बढ़ने लगा। बेचारी निर्दोष सेवाशील बहूपर मिथ्या दोष लगाये जाने लगे और बात-बातमें उसपर गालियोंकी बौछार होने लगी। एक दिन मृणालिनीने एक जलती लकड़ी उसके पैरपर दे मारी, वह दर्दसे एक बार तो चीख उठी, पर फिर तुरंत ही चुप हो गयी। श्रीहाराणचन्द्र अपनी पत्नीके इस दुर्व्यवहारसे बड़े दुःखी हो गये। उन्होंने उसे समझानेका बहुत प्रयत्न भी किया, पर मृणालिनीको वे समझा नहीं पाये। मन-ही-मन कुढ़ते रहे अपनी पत्नीकी इस नीचतापर!

अनुकूलचन्द्रके दुःखका पार नहीं था। कई बार उसके मनमें बड़े जोरका उफान उठता, पर शशिबालाके सुधास्रावी शीतल वचन-सलिलसे वह शान्त हो जाता। बड़ा विचित्र स्वभाव था शशिबालाका। लगातार इतने भयानक अत्याचार होनेपर भी उसके मनमें कुछ भी विकार न आया। न उसके चेहरेपर ही कभी कोई विकारकी रेखा प्रकट हुई। भीषण वज्राघात सहनेवाले अचल-अटल गिरिराजके समान वह प्रसन्नतासे सब कुछ सहती रही।

एक दिन माताके भीषण दुर्व्यवहारसे अनुकूलचन्द्र अत्यन्त दुःखी हो गये और उन्होंने अलग हो जानेकी बात सोची। वे कुछ

कड़ी बात कहनेवाले थे कि शशिबाला उन्हें अलग ले गयी। बड़ी नम्रताके साथ समझाकर बोली—'तुम इतने क्षुब्ध क्यों होते हो? माताजीने दहेजकी बड़ी आशा लगा रखी थी, उनकी यह आशा पूरी नहीं हुई। इससे उनको क्षोभ होना स्वाभाविक ही है। कामनापर चोट लगती है तब वह क्रोधके रूपमें प्रकट होती है एवं क्रोध एक ऐसी बीमारी है जो मनुष्यको कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे वंचित करके उसके द्वारा उसीके अकल्याणका कार्य करवा देती है। माताजी इसी बीमारीसे ग्रस्त हैं, वे अपनी सहज चेतनामें नहीं हैं। इसीसे वे हमलोगोंके साथ अमित दुर्व्यवहारके रूपमें अपनी ही बड़ी हानि कर रही हैं। इस अवस्थामें हमलोगोंका यह कर्तव्य कदापि नहीं कि हम अपने मनकी सुख-शान्तिकी आशासे उनके साथ बदलेमें अनुचित व्यवहार करके उनकी बीमारीको और भी बढ़ा दें। हमें सब कुछ सहन करके उनका हितसाधन करना तथा विशुद्ध मनसे सेवा करके उनकी बीमारीको मिटानेका प्रयत्न करना चाहिये। सेवाका आदर—सेवाका मूल्यांकन तो हो ही नहीं, सेवाको सेवा न मानकर उसे तंग करना बतलाया जाय और सेवाके बदलेमें तिरस्कार-अपमान, भर्त्सना-कुवाच्य दिये जायँ, गाली-गलौज किया जाय। इतनेपर भी सेवाका कार्य बिना विक्षोभ, शान्तिके साथ चलता रहे, तभी वास्तविक सेवा होती है। पागल तो अपने मनकी करेगा ही, उसके बर्तावको देखनेसे काम नहीं चलता। माताजी इस समय पागल-सी हो गयी हैं। वे तुम्हारी जननी हैं। तुमको उन्होंने हृदयका रस देकर पाला-पोसा है। अतएव वे मेरी पूजनीया हैं। तुम एवं तुम्हारी धर्मपत्नी होनेके कारण मैं—उनके उपकार-ऋणसे कभी उऋण हो ही नहीं

सकते। एक बात और है—अपमान एवं गाली लेनेसे लगती है। हमलोग उसे पुरस्कार क्यों न मानें।'

इस प्रकार शशिबालाने पतिको बहुत-सी बातें समझाकर शान्त कर दिया और वह सब कुछ सहर्ष सहन करती हुई बड़ी बुद्धिमानी तथा सावधानीके साथ श्वशुर-सासकी तथा स्वामीकी यथायोग्य सेवा करती रही। वह अपने स्वभावपर अटल बनी रही। पर अभी इसकी तपस्याका फल प्रकट नहीं हुआ—सास मृणालिनीका व्यवहार नहीं बदला।

एक दिन पुनः रसोईघरमें गुस्सेमें पागल मृणालिनी जलती लकड़ी हाथमें लेकर शशिबालाकी ओर दौड़ी। गुस्सेके जोशमें होश नहीं था, पैर फिसल गया और गिर पड़ी। बड़ी चोट लगी। साथ ही जलती लकड़ीसे उसकी साड़ीमें आग लग गयी और वह जलने लगी। शशिबाला पानीका कलसा लेकर सामनेसे आ रही थी, वह चीख सुनते ही कलसा वहीं छोड़कर भागी और उसने जाकर सासको उठायी, उसकी आग बुझायी, पर वह इसी बीच बुरी तरह जल गयी थी। आग बुझानेमें शशिबालाके हाथ भी कई जगह दाझ गये, पर उसने इसकी परवाह न कर सासको उठाकर अपनी गोदमें सुला लिया। मृणालिनी इस अवस्थामें कराहती हुई भी उसपर गालियोंकी बौछार कर रही थी। गालियोंके साथ ही कह रही थी—'तेरे ही कारण मैं गिरी, मेरे चोट लगी और मैं जल गयी, तेरा सत्यानाश हो।' शशिबाला कुछ नहीं बोली। वृद्ध हाराणचन्द्र नित्यकी भाँति नदी-किनारे स्नान-भजन करने गये हुए थे। अनुकूलबाबू भाग्यसे उस दिन घर आये हुए थे। वे दौड़े। दोनों पति-पत्नीने मिलकर माँको चारपाईपर

सुलाया। वैद्य बुलाये गये। चिकित्सा प्रारम्भ हुई। शशिबाला सच्चे तन-मनसे सासकी सेवामें जुट गयी। दवा-दारू देना, पट्टी लगाना, टट्टी-मूत फेंकना, खँखार हाथमें लेकर फेंकना, अपने हाथसे मुँहमें ग्रास देना, अंग दबाना—सभी कार्य वह बड़ी खुशी-खुशीसे करने लगी। घरका काम तो सँभालती ही थी, पर सेवामें जरा भी त्रुटि नहीं आने दी। वह रात-दिन उसके पास ही बनी रहती, सास मृणालिनी धीरे-धीरे ठीक होने लगी—साथ ही अब उसका हृदय भी पलटने लगा। चार-पाँच महीने वह खटियापर रही। इसी बीच शशिबालाकी अकृत्रिम सेवाके कारण उसके हृदयमें अपनी करनीके लिये पश्चात्तापकी ऐसी भयानक आग भड़की कि उसने उसके हृदयकी समस्त मलराशिको जला दिया। शशिबालाकी सहज मधुर आदर्श सेवाके अमृतरससे उसके सारे पाप धुल गये और उसके शुद्ध हृदयमें शशिबालाके प्रति सच्चे आदर तथा स्नेहका समुद्र उमड़ पड़ा। वह अच्छी हो चली थी। एक दिन उससे रहा नहीं गया। वह रो पड़ी और उसने शशिबालाके दोनों हाथ पकड़कर अपने मस्तकपर रख लिये तथा कहा—'बहू! तू लक्ष्मी है। मैं नरककी पिशाचिनी हूँ। तू मेरे अपराधको क्षमा कर।' बहू भी रोने लगी। आज उनके जीवन-ग्रन्थका नया मधुर अध्याय आरम्भ हो गया।

मृणालिनी शरीरसे ही अच्छी नहीं हो गयी, मनसे भी अच्छी हो गयी। उसके व्यवहारके कण-कणमें शशिबालाके प्रति स्नेह-सुधा बरसने लगी। सारा घर परम पवित्र तथा परम सुखी हो गया।

—राखालचन्द्र बनर्जी

कर्तव्यपालन

चोटिलाके दो मित्र थे। एक जातिके बनिये और दूसरे अन्य जातिके। वणिक् भाई दो पैसोंसे सुखी थे और दूसरे गरीब। दोनों मित्रोंने कमानेके लिये बाहर जाना निश्चय किया। दोनों कलकत्ते पहुँचे। वणिक् भाईके बाड़ थी, बाड़के सहारे बेल जल्दी बढ़ती है, इससे वे कलकत्तेमें काममें लग गये। उन्होंने अपने मित्रको भी काममें लगाया। कई वर्ष बीत गये। कालका चक्र घूमा। दूसरे मित्रको कुदरतने प्यार दिया, उन्होंने बम्बई जाकर होजरीका कारखाना खोला और धनी हो गये। उधर उन वणिक् मित्रका कलकत्तेमें काम नहीं चला, इससे वे भी बम्बई चले गये।

काम-काज ठीक ढंगसे नहीं बैठा, इससे उनको, उन दूसरे भाईने अपनी गद्दीमें मुनीमकी जगह रख लिया। वणिक् भाई बड़े ईमानदार तथा परिश्रमी थे और वे दूसरे भाई भी उन्हें नौकरकी तरह नहीं, परन्तु अपने भाईकी तरह ही रखते थे।

दोनोंके परिश्रम तथा कार्यकुशलतासे उन दूसरे मित्रका कारोबार चमक उठा और दिनों-दिन बढ़ने लगा। इसी बीच मुनीम भाई बीमार हो गये। दवा-दारू चालू हुई। डॉक्टरोंकी रायके अनुसार जलवायु परिवर्तनके लिये उन्हें मित्रने पंचगनी भेजा। सब प्रकारकी दवाएँ की गयीं। पैसेकी ओर कुछ भी नहीं देखा गया। तथापि हुआ वही जो मालिकको मंजूर था। मुनीमजीका कुटुम्ब अनाथ हो गया। विधवा बहिनका सहारा चला गया। घरमें कोई भी कमानेवाला न रहनेके कारण वह अत्यन्त दु:खी हो गयी। सगे-सम्बन्धियोंसे सूखी सहानुभूति

मिली। रोटी देनेवाला गया सो गया ही। तेरहवींके दिन भाई-बन्धु इकट्ठे हुए। उनमें मुनीमजीके मालिक मित्र भी थे। उन्हें मित्रके घरकी स्थितिका ध्यान आया। विधवा बहिनसे पूछकर उन्होंने उनकी आर्थिक स्थिति समझ ली। वे कुछ क्षण गहरे विचारमें पड़ गये। सब लोगोंके चले जानेके बाद उन्होंने मुनीमजीके बच्चेको अपनी गोदमें बैठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए मन-ही-मन सोचा—'मेरी आजकी इस अच्छी स्थितिकी जड़ तो वस्तुतः उस मृत भाईकी ममता और सहायता ही है। इस बातको मैं कैसे भूल सकता हूँ।' उनके हृदयमें कर्तव्यकी जागृति हुई, आँखें गीली हो गयीं। वे बोले—'बहिन! भाई चले गये पर मैं तो हूँ न? तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना। हर महीने बच्चेको ऑफिसमें भेज देना। जबतक यह स्वयं न कमाने लगे तबतक प्रतिमास मुनीमजीका वेतन यह लाता रहेगा। इसके अतिरिक्त जब कभी किसी कारण ज्यादा रकमकी जरूरत हो तो मुझे जना देना, उसकी व्यवस्था हो जायगी। जिसने मेरा हाथ पकड़ा था, मेरे लिये आज उसके बच्चेका हाथ पकड़नेका समय है। मैं यदि इस कर्तव्यसे चूक जाऊँ तो मेरी मानवता ही लजा जाय।' (अखण्ड आनन्द)

—धीरुभाई दवे

कृतज्ञता

निवासस्थानसे लगभग तीन-चार सौ मील दूर मुझे नौकरी प्राप्त हुई। इस जगह मेरी विरादरीके लोग अल्प संख्यामें हैं, इस कारण जब बड़ी कन्या विवाह-योग्य हुई, तब कठिनाई उपस्थित होना स्वाभाविक था। वह विवाहका विरोध भी करती थी, अतः समय टलता गया। लड़की बड़ी हो गयी और उसने उच्च-शिक्षा भी प्राप्त की। मुझे समय-समयपर वर खोजनेके निमित्त छुट्टी लेकर जाना पड़ता, परंतु समीप ही जब अच्छी लड़कियाँ मिलती हों, तब दूर विवाह करने कौन लड़केवाला जाय, वह भी वयस्क लड़कीसे और उच्च-शिक्षा प्राप्तसे। एक बार बात करनेसे कोई निश्चय न हो पाता, दूसरी तथा तीसरी बार आकर वार्ता करनेकी अपेक्षा रह जाती। मेरा जाना बार-बार हो नहीं सकता था। जहाँ लड़केके अभिभावक सहमत हुए, वहाँ जन्मपत्रके ग्रह न मिले। कहीं वर और कहीं घर—मुझे पसन्द न आया। इंगलिस्तानसे लौटे एक युवकने कहा कि वह स्वयं मेरी कन्याको देखेगा, अन्य लड़कियोंसे भी साक्षात्कार करेगा। तत्पश्चात् वह विवाहके विषयमें निर्णय करेगा। मैंने इस प्रकारकी सौन्दर्य-प्रतियोगितामें पुत्रीको सम्मिलित करनेसे इनकार कर दिया।

एक रात्रिके समय सोनेसे पूर्व मैं टहलता हुआ चीरहरणके समयकी द्रौपदीकी प्रार्थना बोल रहा था—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥

—आदि। (तब पुत्रीके विवाहकी बात ध्यानमें नहीं थी।) उस

समय पत्नीने व्यंग किया—'अच्छा, आज तो भगवान्‌का ध्यान आ रहा है।' मैंने उत्तर दिया—'भगवान् तो सदा हृदयमें विराजमान हैं।' फिर वह कपाट बन्दकर अपने कक्षमें सोने चली गयीं। मैंने एक क्षण सोचकर उनसे किवाड़ खुलवाये और तर्क किया कि 'तुम यह तो मानती हो कि पतिव्रता स्त्रीको किसी ध्यान-पूजनकी आवश्यकता नहीं होती। यदि स्त्री नियम और तत्परतापूर्वक कुटुम्ब और पतिकी सेवा करती है तो इसीसे उसका हृदय शुद्ध हो जाता है और वह संसार-सागरको सरलतासे तर जाती है। क्या तुम समझती हो कि परमेश्वरकी ओरसे यह कन्सेशन, विशेष सुभीता केवल स्त्रियोंको ही मिला है और पुरुष शरीरवालोंको इसके अनुरूप कोई सुविधा प्राप्त नहीं है? मेरा विश्वास है कि पुरुष भी अपने सांसारिक कार्यका निर्वाह धर्म और निष्ठापूर्वक करता है तो वह भी बिना किसी विशेष उपासनाके पतिव्रताकी भाँति उस कृपाका अधिकारी हो सकता है। मैं अपना कर्तव्य लगन और परिश्रमपूर्वक पूरा करता हूँ, इसलिये मेरा वही कर्म भगवान्‌की सेवा हो जाता है और मुझे अलगसे किसी साधन-भजनकी आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकार अपना पक्ष ऊँचा करके मैं भी शयन करने चला गया, परंतु विचारधारा बन्द नहीं हुई। मैं सोचने लगा कि यदि सचमुच कर्तव्यपरायणता ही भगवान्‌की उपासना है तब तो भगवान्‌ने गीतामें जो यह कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

'अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए जो लोग मेरी उपासना करते हैं उनके योग-क्षेम, सांसारिक आवश्यकताओंका भार मैं

मैंने उनका सत्कार किया, उनके भोजनकी व्यवस्था की और तत्पश्चात् पुत्र-पुत्रियोंको बुलाकर उनके सम्मुख खड़ा कर दिया। फिर विवाह-सम्बन्धकी बात प्रारम्भ हो गयी। मैं उनके वार्तालापसे इस निष्कर्षपर पहुँचा कि इनसे पार पाना सरल कार्य नहीं है। दूसरे दिन वे विदा हो गये। परंतु पंद्रह दिन पीछे वे पुनः आये। फिर बात हुई, भोजन हुआ, उसके बाद उन्होंने प्रकट किया कि लड़का भी आया है। उन्हें हमारे कुटुम्बके बारेमें कुछ व्यक्तियोंसे पूछताछ करनी थी जो वे कर चुके थे। मैं लड़केसे मिला और दो घण्टे उससे विविध विषयोंपर वार्तालाप हुआ। मैं उसकी बुद्धि, योग्यता और शालीनतासे बहुत प्रभावित हुआ और अपने मनमें वाह-वाह कहता हुआ घर वापस आया। जितनी प्रसन्नता मुझे उस युवकको देखकर हुई, उतनी अन्य किसीको देखकर नहीं हुई। उन दिनों एक अन्य स्थानसे भी विवाहकी बात चल रही थी, परंतु हम दम्पतीने निर्णय किया कि घर आयी लक्ष्मीको न लौटानेकी जैसी कहावत अन्य अर्थमें है वैसे ही हमें भी घर आये नारायणको खाली नहीं लौटाना चाहिये। उस कुटुम्बका हाल मुझे पहलेसे ज्ञात था। इस कारण घर बैठे ही कन्याका विवाह निश्चित हुआ। परिणयके दिन मैंने अनुभव किया कि वह शायद मेरे जीवनका सर्वोत्कृष्ट दिवस था।

पुत्रीके उस कुटुम्बपर जब कभी कठिनाइयाँ आती हैं, तब मैं यह सोचता हूँ कि जिस शक्तिने उसके विवाहका प्रबन्ध किया था, वही उनका निराकरण भी करेगी। मैं उन सर्वशक्तिमान् परम सुहृद् भगवान्के प्रति कृतज्ञता कैसे प्रकट करूँ।

—ठाकुरप्रसाद शर्मा

ईमानदार रसोइया

राजस्थान प्रान्तका जगदीश शर्मा नामका एक गरीब ब्राह्मण कुछ समयसे आसनसोलमें रहता है और विवाह-शादियोंके अवसरोंपर रसोइयेका काम करके अपना गुजर चलाता है। पिछले दिनों उसे आसनसोलसे दुबराजपुर एक लड़कीके विवाहपर रसोइयेके कामपर भेजा गया था और उसीके साथ उसी विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये एक शिक्षित नवयुवक भी गया था। उस नवयुवकके साथ एक सन्दूक था, जिसमें लड़कीके विवाहके लिये कीमती कपड़े-गहने और नगद आदि कुल मिलाकर लगभग दस-पंद्रह हजार रुपयोंका सामान था। परंतु बेचारे रसोइयेको जरा भी पता नहीं था कि अमुक व्यक्ति और अमुक सामान उसीके साथ और उसी विवाहोत्सवके लिये जा रहा है। दुर्भाग्यवश रसोइया सो गया। गाड़ी जो अण्डाल जंक्शनपर बदलनी थी, न बदलकर वह हबड़ा स्टेशनतक सोया ही चला गया। स्टेशनपर सभी मुसाफिर उतर चुके थे। वह नवयुवक भी, जिसके ऊपर उस सन्दूकको सही-सलामत ले जानेका भार था, सन्दूकको छोड़कर न जाने कहाँ चला गया था। अचानक बेचारे रसोइयेकी आँखें खुलीं तो उसने देखा कि रेलगाड़ी सूनी खड़ी है, सभी मुसाफिर उतर चुके हैं। केवल वह अकेला ही उस गाड़ीमें पड़ा है और उसके सामने एक वजनदार सन्दूक पड़ा है। बेचारा बड़े चक्करमें पड़ा और सोचने लगा कि इस सन्दूकको क्या किया जाय। अन्तमें लाचार होकर उसने कुलीद्वारा उस सन्दूकको उठवाया और बिना टिकट ही आसनसोलके लिये रवाना हो गया; क्योंकि वापस आनेके लिये उसके पास पैसे नहीं थे, परंतु बंडेल स्टेशनपर टिकटचेकरके द्वारा

पकड़ लिया गया। किसी तरह उससे पीछा छुड़ा लेनेके पश्चात् उसने विचार किया कि अब बिना टिकट यात्रा करना उचित नहीं है और यहाँसे टिकट ले लेना ही अच्छा है। उसने संदूकका ताला खोला परंतु ताला खुलते ही वह अवाक् रह गया! संदूकमें सौ-सौके नोट, दस-दस और पाँच-पाँचके नोटोंकी गड्डियाँ, दूल्हेको देनेके लिये घड़ी, दुशाला और लड़कीके लिये गहना, तिल और विवाहके खर्चके लिये नगद आदि सभी उस संदूकमें भरे हैं। वह गम्भीरतासे सोचने लगा और उसके दिमागमें यह बात घर कर गयी कि हो-न-हो यह सामान किसी ऐसे व्यक्तिका है जो अपनी लड़कीका विवाह रचाने बैठा है। यदि यह सामान उसे न मिला तो निर्दोष कन्या कुँआरी ही रह जायगी। शायद यह माल दुबराजपुरवालोंका ही हो! अतः आसनसोलका विचार छोड़कर वह दुबराजपुर चला गया। इधर संदूक खो जानेके कारण सारा कार्यक्रम ही ठप पड़ गया था। परिवारके सभी लोग दुःखी और निराश हो गये थे। ऐसे मौकेपर वह रसोइया संदूक लेकर पहुँचा तो सबके जान-में-जान आ गयी और विवाहका काम आगे बढ़ा। यह है एक गरीब रसोइयेकी ईमानदारी, जो उन व्यक्तियोंके लिये एक आदर्श है जो धनी-मानी और सम्पन्न होते हुए भी दूसरोंकी छोटी-छोटी वस्तुओंपर अपनी नीयत बिगाड़ लेते हैं। वह चाहता तो उस संदूकको आसानीसे हड़प सकता था, परंतु एक निर्दोष कन्याके भोले-भाले चेहरेकी यादने तथा उसकी ईमानदारीने उसे अपने कर्तव्यपर दृढ़ कर दिया।

—शिवचरण शर्मा

हृदयकी जलन

कुछ वर्षों पहलेकी बात है, एक सेठके यहाँ एक दिन एक महात्मा पधारे। सेठने महात्माका भली प्रकार सत्कार किया तथा महात्माको प्रसन्न जानकर उनसे कहा—'भगवन्! आपकी कृपासे मेरे लिये कोई सांसारिक पदार्थ अलभ्य नहीं है। धन-धान्यसे घर भरा हुआ है, पुत्र-पौत्रादिकी कमी नहीं है, पर न जाने क्यों, फिर भी मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिलती। ऐसा लगता है जैसे कलेजेमें अग्नि जल रही हो। कोई ऐसा उपाय बतानेकी अनुकम्पा करें, जिससे यह हृदयकी जलन मिटे।'

साधुने सहजभावसे कहा—'शोक-संतप्त, दुःख-दलित, व्यथित व्यक्तियोंको सुख पहुँचानेकी कोशिश करो। उनके संकट दूर करो। उनके हृदयकी जलन मिटाओ, परमात्मा तुम्हारे हृदयकी जलन मिटायेंगे।'

महात्मा चले गये। उनके आदेशानुसार सेठजीने विभिन्न तीर्थ-स्थानोंपर घूम-घूमकर अनेक दीन-दुःखियोंकी सहायतामें लगभग पचास-साठ हजार रुपयेका दान कर दिया, पर जियकी जरनि (हृदयकी जलन)-में लेशमात्र भी अन्तर नहीं आया। संयोगसे वही महात्मा पुनः पधारे और सेठजीसे उन्होंने कुशल-मंगल पूछा। सेठजीने हाथ जोड़कर सिर झुका दिया। जब महात्मा भोजनादिसे निवृत्त हो चुके तो सेठजीने विनम्र होकर कहा—'भगवन्! आपके आदेशका मैंने यथासम्भव पालन किया, पर अभीतक मेरे हृदयकी जलनमें कोई भी अन्तर नहीं आया।'

महात्माने कहा—'सेठ! तुमने दान तो अवश्य किया होगा

वहन करता हूँ।' इस आश्वासनकी पूर्ति मेरे प्रति नहीं हुई और मेरे कार्यव्यस्त रहनेपर मेरी कन्याके विवाहका कोई प्रबन्ध गीतोपदेश करनेवाले परमपुरुषकी ओरसे नहीं किया गया।

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता है कि यद्यपि मेरे नौकरीके कामको लोगोंने कृपापूर्वक अच्छा ही माना है, परंतु उसमें कोई विशेषता नहीं थी और किसी भी दशामें मेरा वह कर्म न तो उक्त श्लोकमें वर्णित अनन्य चिन्तनकी कोटिमें आ सकता था और न मैं किसी प्रकार गीताकी भाषामें नित्ययुक्त ही कहा जा सकता था। मेरा उस प्रकार सोचना शुद्ध मिथ्याभिमान और ईश्वरके ऊपर जघन्य दोषारोपणमात्र ही था।

परंतु इस उपालम्भको एक महीना ही नहीं हुआ था कि एक विचित्र बात हुई। एक दिन संध्या-समय जब मैं कार्यालयसे घर लौटा, मैंने एक सज्जनको बरामदेमें बैठे अपने ज्येष्ठ भ्रातासे बातें करते पाया। मैंने उनके दर्शन एक अन्य स्थानपर एक विवाहोत्सवमें किये थे, परंतु उस समय उनका ध्यान मेरी ओर नहीं गया था। वहाँ मुझे बताया गया था कि उनका एक सुयोग्य पुत्र अविवाहित है और उसने एक कम पढ़ी-लिखी कन्यासे जहाँ सम्बन्ध पक्का हो रहा था, विवाह करना अस्वीकार कर दिया है। मैं इन सज्जनके पास जानेके लिये उत्सुक था, परंतु उन्हें इसका पता नहीं था और आश्चर्य था कि वे स्वयं ही मुझ अपरिचितके द्वारपर आकर उपस्थित हो गये। उन्होंने कहा—'हम इधर समीपस्थ एक नगरमें मुकदमेके सिलसिलेमें आये थे, आप हमारी जातिके एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, ऐसा हमने सुन रखा था; अतः हम यहाँ आपसे भेंट करने चले आये।'

और वह बहुत ही अच्छा किया। पर वास्तविक पात्रोंको दान नहीं हुआ होगा। दानका परम फल तभी होता है जब वह यथार्थ पात्रको किया जाता है।'

सेठजी चरणोंमें गिर गये। महात्मासे निवेदन किया—'भगवन्! सुपात्र-कुपात्रकी पहचान मुझे तो नहीं है। आप ही कृपा करके बताइये कि मैं क्या करूँ, जिससे मेरा यह संकट दूर हो। इस जलनके कारण मुझे कोई भी सांसारिक पदार्थ प्रिय नहीं लगता। मुझे अपना जीवन भी प्रिय नहीं लगता।'

संध्याका समय हुआ, महात्मा घूमने निकले। रास्तेमें पीपल-वृक्षके नीचे कुछ मनुष्य बैठे हुए थे। उनमें एक व्यक्तिसे महात्माजी परिचित थे। उसको महात्माने अलग बुलाकर पूछा—'यहाँ जो आदमी बैठे हैं, उनमें कोई अच्छा आदमी है?' वह बोला कि आदमी तो सभी अच्छे हैं, पर वे महाशय, जिनके कंधेपर कश्मीरी शाल और एक हाथमें सोनेका कड़ा है, इनमें सबसे श्रेष्ठ हैं।

महात्माजीने पूछा—'वह कैसे?'

उत्तर मिला—'इन महाशयके पूर्वज अत्यन्त सम्पन्न पुरुष थे; किंतु लक्ष्मी अस्थिर है। उसका सर्वदाके लिये कोई निश्चित स्थान नहीं है। इस समय इन महाशयकी दशा इतनी दयनीय है कि जो वर्णनातीत है। सुबह-शामके भोजनका प्रबन्ध नहीं है, बच्चोंको ढकनेके लिये पूरे वस्त्र नहीं हैं, घरमें विवाह-योग्य कन्या धनाभावके कारण भारस्वरूप हो रही है, पर फिर भी, अपने पूर्वजोंके अनुसार कंधेपर शाल और हाथमें कंगनको कायम रखकर इन्होंने अपने पूर्वजोंकी इज्जतकी रक्षा की है।

इनसे श्रेष्ठ मनुष्य अन्यत्र आपको कहाँ मिलेगा।

परिचित व्यक्तिसे महात्माने कहा—'व्यासजी! मैं इनको कुछ आर्थिक सहायता दिलाना चाहता हूँ।' व्यासजीने कहा कि 'मैं इन्हें पूछकर आपको उत्तर दूँगा।' जब व्यासजीने अपने कंगनवाले मित्रसे चर्चा की तो वे बोले—'व्यासजी! मैं ऐसे कैसे ले सकता हूँ? हाँ, अगर मुझसे कथा करवाकर कथापर चढ़ा दें तो उसे मैं स्वीकार कर सकता हूँ।'

कथाका प्रबन्ध किया गया। सेठजी हमेशा उसपर चढ़ाया करते, पर उनकी जलनमें कोई अन्तर नहीं हुआ। जब पूर्णाहुतिका दिन आया तो सेठजीने महात्माजीसे पूछा कि 'आज क्या चढ़ाना चाहिये?' महात्माने कहा—'एक हजार रुपये।' समाप्तिपर सेठजीने पूरे रोकड़ी एक हजारकी थैली कथापर भेंट कर दी। सौ-पचासकी आशा करनेवाले कथावाचकजीने जैसे ही चढ़ावेमें एक हजारकी थैलीके दर्शन किये, उनके दिलकी, वर्षोंसे चली आ रही हृदयकी जलन तत्क्षण समाप्त हो गयी—अब तो कन्याका विवाह अच्छी तरह हो जायगा। और देखिये, उसी क्षणसे सेठजीके हृदयकी जलन शान्त होने लगी।

पण्डितजी तो चढ़ावा लेकर चले गये, दूसरे दिन महात्माजीने सेठजीसे पूछा—'कहो क्या हाल है?'

सेठजीने चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें दृढ़तासे पकड़ लिया। महात्माने पीठ थपथपाकर आशीर्वाद दिया। सेठजीने कहा—'थैली भेंट करते ही मेरी जलन तीव्र गतिसे मिटने लगी और कल रातको मेरा चित्त पर्याप्त प्रसन्न था। इस समय आपके अनुग्रहसे मैं आनन्दानुभव कर रहा हूँ, पर अभी रुपयेमें सोलह् आने नहीं।'

एक सप्ताह पश्चात् महात्माने सेठजीसे दो सौ रुपये और लिये और वे कथावाचकजीके घर गये। पूछनेपर कथावाचकजीने बताया कि 'एक हजार रुपयेसे लड़कीका विवाह अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। हाँ, डेढ़-दो सौ रुपये अभी बाजारके चुकाने बाकी हैं, सो वह भी किसी तरह हो जायगा।'

महात्माजीने कहा कि 'सेठजी आपसे अमुक पाठ करवाना चाहते हैं और ये दो सौ रुपये पारिश्रमिकस्वरूप भेजे हैं।' कथावाचकजीने रुपये लिये, पाठ किया। इसके साथ-साथ सेठजीके हृदयमें जो बची-खुची जलन थी वह भी समाप्त हो गयी।

—श्रीलाल नथमल जोशी

सुन्दरकाण्डका माहात्म्य

हमारी नतिनी (दौहित्रपुत्री) श्रीरामरंजनसिंहजी रेंजर (Ranger Ranchi) राँचीकी पुत्री गत ४-९-६० को बीमार पड़ी। उसका इलाज बड़े योग्य डॉक्टर M.D ने शुरू किया। पेशाब एवं खूनकी जाँच की गयी, पर बुखारका वेग कम नहीं हुआ। १०२ से १०४ डिग्री बुखार नित्यप्रति उसको आता था। वह भी दिनमें दो बार।

बढ़िया-से-बढ़िया उपलब्ध औषध कैपसुलसे लेकर साधारण मिक्सचर (Mixture) तथा सुइयाँ (Injections) भी की गयीं; परंतु लाभ नहीं हुआ। बुखारका वेग कुछ भी कम नहीं हुआ।

मैंने एक बार सुन्दरकाण्डका माहात्म्य 'कल्याण' या मानसमणिमें पढ़ा था। लेखमें लिखा था कि सभी विपत्तियाँ एकमात्र 'सुन्दरकाण्ड'-के पाठसे ही मिट सकती हैं। लेखपर विश्वास करके एवं प्रभुकी कृपा तथा दयालुताको स्मरण कर मैंने 'सुन्दरकाण्ड' एवं हनुमानचालीसाका पाठ रोगीके सिरहाने बैठकर धूप वगैरह देकर नियमपूर्वक आरम्भ कर दिया। दवा भी चलती रही।

दूसरे दिनसे बुखारका वेग कम होने लगा और दसवें दिन १०२ डिग्रीसे एकाएक ९६ डिग्रीपर बुखार उतर आया। बुखार उतर जानेके बाद भी सात दिनोंतक पाठ चलता रहा। सात दिनके पाठसे वह पूर्णतः स्वस्थ एवं चंगी हो गयी। बुखार निर्मूल हो गया।

हमारा विश्वास है कि सुन्दरकाण्ड एवं हनुमानचालीसाके पाठ-द्वारा ही प्रभुकी कृपा हुई। कोई भी भाई विपत्तिके समय विश्वासपूर्वक स्वयं पाठ करके तत्काल फल प्राप्त कर सकता है। यह सत्य घटना एवं अनुभूत प्रयोग पाठकोंके लाभके लिये प्रेषित है।

—गिरीश्वरप्रसाद सिंह बाँका

महामनाकी ममता

कुछ पुरानी बात है। मैं उस समय बम्बईमें रहता था। अमृतसरमें काँग्रेसका अधिवेशन था। लोकमान्य तिलक अध्यक्ष थे। मैं अपने एक तरुण मित्रके साथ बम्बईसे अमृतसर पहुँचा। दिसम्बरका अन्त था। उस साल कुछ ही दिनों पहले अमृतसरमें भयानक वर्षा हुई थी। पंजाबकी सर्दी प्रसिद्ध है और इस वर्षाके कारण वहाँ सर्दी बहुत ही बढ़ी हुई थी। हमलोगोंने बम्बईमें सर्दी देखी नहीं थी, इससे साधारण कपड़े ले गये थे। दोनोंके पास ओढ़ने-बिछानेके लिये एक-एक चद्दर और एक-एक हलका-सा कम्बल था।

अमृतसरमें हमलोग महामना मालवीयजीके डेरेपर जाकर ठहरे। महामनाका मुझपर बड़ा स्नेह था। एक बड़ी धर्मशालामें वे ठहराये गये थे। शायद महात्मा गाँधीजी भी उसीमें ठहरे थे। रातको हम दोनों दो चारपाइयोंपर सो गये। शरीर ठिठुर रहा था। छातीमें पैर दिये पड़े थे। कम्बलसे मुँह ढक रखा था। पर बदन काँप रहा था। रातको ९ बजे होंगे। महामना मालवीयजी सबको सँभालते हुए हमलोगोंकी चारपाइयोंके पास आये। मुँह ढके सिकुड़े सोये देखकर उन्होंने पूछा—'कौन हो? कहाँसे आये हो? खाया कि नहीं?' मैंने मुखपरसे कपड़ा हटाया। तुरंत उठकर खड़ा हो गया, चरणस्पर्श किया। मेरे साथीने भी उठकर चरणस्पर्श किया। हमलोग काँप रहे थे। उन्होंने मुझे पहचानकर पूछा—'कपड़े कहाँ हैं?' मैंने कहा—'बिछा-ओढ़ रखे हैं न?' वे बोले—'बस, यही कपड़े हैं? तुम्हें पता नहीं था क्या यहाँ

कितने कड़ाकेका जाड़ा पड़ता है। अमृतसरको बम्बई समझ लिया?' यह कहते-कहते ही उन्होंने उनके साथ आये हुए एक पंजाबी सज्जनसे कहा—'जल्दी आठ कम्बल लाइये।' फिर पूछा—'खाया कि नहीं?' मैंने कहा, 'खा लिया ?' फिर बोले—'देखो, तुमने बड़ी गलती की जो मुझसे कहा नहीं, यह तो मैं आ गया, नहीं तो तुमलोगोंको रातको बड़ा कष्ट होता और पता नहीं इसका क्या नतीजा होता। क्यों इतना संकोच किया?' मैं क्या उत्तर देता। इतनेमें दो-तीन आदमी आठ मोटे कम्बल ले आये। दो-दो कम्बल हमारी चारपाइयोंपर बिछा दिये गये और दो-दो उढ़ा दिये। गरम चाय मँगवाकर दोनोंको पिलायी। जबतक हमलोग चाय पीकर सो न गये, तबतक वे वहीं एक कुर्सीपर बैठे रहे। हमलोग उनके जानेपर ही सोना चाहते थे—पर उन्होंने कहा—'जबतक तुमलोग ओढ़कर सो नहीं जाओगे—तबतक मैं नहीं जाऊँगा।' इसलिये हमें सोना पड़ा। उन्होंने हमलोगोंको ही नहीं, वहाँ ठहरे हुए सबको सँभाला—देखा और सबकी आवश्यकताएँ पूरी कीं। उनकी यह ममता देखकर हमलोग दंग रह गये।

—एक कृतज्ञ

गुप्त और मूक सेवा

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। मेरे चाचा गाँवमें गुजराती पाठशालाके प्रधान अध्यापक थे। एक बार थोड़ी बरसात होकर बंद हो गयी थी। बीस दिनोंसे आकाशमें कहीं बादल नहीं दिखायी देते थे।

गाँव जागीरदार राजपूतोंका था। पुरानी प्रतिष्ठा, रूढ़ियोंके बन्धन तथा असह्य महँगीके कारण उनकी स्थिति एकदम शोचनीय हो गयी थी। फिर, अब तो अनाज भी समाप्त हो रहा था। जिनके लेन-देनका व्यवहार था, वे तो महाजनोंसे सवाई (एक मन अनाज लेकर सवा मन देना) पर बाजरी लेकर काम चला रहे थे। पंरतु जिनका यह व्यवहार टूट गया था, उन्हें अनाज कौन देता? अब तो अकालका भय सिरपर सवार था।

मेरे चाचाजी विचार करने लगे कैसे इन लोगोंकी सहायता की जाय। स्वयं छोटे-से वेतनमें क्या कर सकते थे, गाँवके दूसरे लोग भी हाथ बँटावें तो कुछ किया जाय। परंतु यह राजपूत कौम किसीके सामने हाथ फैलाती नहीं। अन्तमें मेरे चाचाजीने एक रात्रिको खाने-पीनेसे सुखी कुछ लोगोंको इकट्ठा करके कठिन परिस्थितिका परिचय दिया।

सबने मिलकर यह निश्चय किया कि अपनी-अपनी गली-मोहल्लेके जरूरतमंद लोगोंकी इस तरहसे सेवा की जाय कि उनको पता ही न लगे—रातके समय चुपचाप उनके घरोंमें अनाज रख दिया जाय और इस बातकी चर्चा कभी भी किसीके सामने न की जाय। कुछ दिनोंमें जब वर्षा हो जायगी तब तो

कोई चिन्ताकी बात रहेगी नहीं। फिर तो, खेतोंमें फसल देखकर महाजनलोग अनाज उधार दे देंगे।

निश्चयके अनुसार काम शुरू हो गया। प्रत्येक गरीबके घरमें आनन्दका वातावरण उत्पन्न हो गया। कुछ लोगोंने रात्रिको छिपकर देखा भी अनाज कौन रख जाता है।

मेरे चाचाजी आदि इतना ही करके नहीं रह गये, उन्होंने आस-पासके गाँवमें भी सेवा करनेवाली संस्थाओंको पत्र लिखकर सहायता करनेके लिये अनुरोध किया।

फिर तो एक सप्ताह बाद आस-पासके सारे प्रदेशमें अच्छी वर्षा हो गयी और सर्वत्र आनन्दका वातावरण छा गया।

(अखण्ड आनन्द)

—सारस्वत

अमृत भोजन

मैं एक बार किसी कामसे कलकत्ते गया था। एक दिन एक सज्जन मेरे पास आये। फटा कुरता, मैली धोती, पुरानी फटी-सी जूती। दुपहरीका समय था, सकुचाते-डरते हुए-से मुझसे कुछ दूर पायदान (पैर पोंछनेके बिछावन)-के पास बैठ गये। मैं एक अन्य सज्जनसे बात कर रहा था। मेरी नजर उनकी ओर गयी। उन्होंने बड़ी विनम्रता, पर संकोचके साथ नमस्कार किया, मानो वे ऐसा मानते हों कि वे नमस्कार करनेयोग्य भी नहीं हैं। मैंने बदलेमें नमस्कार किया। उनको नजदीक आकर सतरंजीपर बैठनेके लिये कहा, वे नहीं उठे। हाथ जोड़कर बोले—'यहाँ बहुत ठीक है।' मैंने उठकर उनका हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया। उनके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। पहलेवाले सज्जन कुछ देर बात करके चले गये। तब मैंने उनसे पूछा—'भाईजी! आप कैसे पधारे? कहाँ रहते हैं?' उन्होंने अपने नाम-जातिका परिचय दिया। मालूम हुआ कि वे मेरी ही जातिके अच्छे घरानेके व्यक्ति हैं। फिर उन्होंने कहा—'मैं आया तो था एक कामसे, पर मुझे कहते बड़ा संकोच होता है, डर भी लगता है।'

मैंने उनसे कहा—'आप जरा भी संकोच न कीजिये। आप तो मेरे बड़े भाई हैं, अपना काम बताइये। मुझसे होनेलायक होगा तो मैं अवश्य करूँगा।' मेरी बात सुनकर उनमें साहस आया। उनके चेहरेपर कुछ आश्वासन तथा आनन्दकी रेखा दिखायी दी। वे बोले—''आप कर सकते हैं, तभी तो आया हूँ। मेरी वृद्धा माता तीन महीनेसे बीमार हैं, वे चल-फिर नहीं सकतीं। पता

नहीं क्यों दो महीने पहले मुझसे उन्होंने कहा—'…………से मुझको मिलना है। वे यदि कलकत्ते कभी आवें तो खयाल रखना और मुझसे मिलाना।' अब परसों आपके यहाँ आनेका पता लगा, तब माताजीके कहनेपर मैं यहाँ आया हूँ। माताजी आपसे मिलना चाहती हैं। आप पधार सकें तो……।'' मैंने कहा—'जरूर आऊँगा। वे मेरी भी तो माताजी हैं, मुझे उनके दर्शनका सौभाग्य और लाभ प्राप्त होगा।' मैंने उनका पता नोट कर लिया और दूसरे दिन ११ बजे उनके घर पहुँचनेका समय दे दिया। मैंने उनसे कहा, 'हम शायद तीन-चार आदमी होंगे।' उन्होंने कहा—'मैं लेने आ जाऊँगा, आपको घर ढूँढ़ना पड़ेगा।' मैंने कहा—'मुझे सबेरे ही एक जगह जाना है। अतः मैं वहाँसे सीधे ही आपके घर आ जाऊँगा, आप न आवें। मैं कलकत्ते रहा हुआ हूँ। इससे आपके घर पहुँचनेमें मुझे कठिनाई नहीं होगी।' मैंने उन्हें कुछ खानेके लिये कहा। उन्होंने कहा—'अभी खाकर ही आया था।' फिर थोड़ा जल पीकर वे चले गये।

दूसरे दिन सबेरे मैं अपने दो मित्रोंके साथ निकला। जहाँ पहले जाना था, वहाँ पहुँचा। वहाँसे एक जगह और गया। लौटते समय कोई जुलूस जा रहा था। रास्ता बंद था। इसलिये रास्तेमें रुकना पड़ा। पहले ही कुछ देर हो गयी थी। हमारी मोटर लगभग एक बजे उनके मकानकी गलीके सामने पहुँची। वे वहाँ खड़े इन्तजार कर रहे थे। पूछनेपर पता लगा, ढाई घंटेसे खड़े हैं। मुझे बड़ा ही संकोच हुआ। मैंने क्षमा माँगी, वे तो मानो लाजसे गड़ गये। पर उनके चेहरेपर इस बातकी बड़ी खुशी थी कि ये हमारे घर आये हैं। मैं उनके साथ-साथ ऊपर गया। जाकर देखा—एक छोटा-सा

कमरा है। सामान प्राय: कुछ भी नहीं है, पर बड़ा साफ-सुथरा है। एक चारपाईपर बुढ़िया माताजी लेटी हैं। उनके पैरोंकी ओर उक्त सज्जनकी धर्मपत्नी खड़ी हैं। एक आठ-दस वर्षका बच्चा भी उनके पास खड़ा है। वे मुझे देखकर बड़ी ही प्रसन्न हुईं। मैंने माताजीके चरणोंमें नमस्कार किया। माताजीकी आँखोंमें आँसू आ गये। कुछ देरके बाद वे आँसू पोंछकर बोलीं—'आप बैठिये। अब मैं सुखसे मर सकूँगी। कई वर्ष पहले मैंने आपका एक भाषण सुना था, तबसे मनमें थी—आपको घर बुलाकर भोजन कराऊँ, पर मेरा ऐसा भाग्य कहाँ था। आप दूर देशमें रहते हैं और हमलोग वहाँ जा नहीं सकते। अब बीमार होनेपर तो मेरा धीरज ही टूटने लगा।' मैंने लड़केसे कहा—'मैं रात-दिन आपको याद करती रहती हूँ। अबकी आवें तो जरूर मिलाना!' लड़केने कहा—'वे यहाँ बहुत कम आते हैं और आते भी हैं तो बहुत व्यस्त रहते हैं—तथा हम गरीबोंके घर शायद उनके साथी-संगी उन्हें न आने दें।' मैंने कहा—'जरूर आयेंगे, अब आज तुम आ गये। सबेरेसे बहूने रसोई बनाकर रखी है। तुम खाकर जाओ।' मुझे माताके वचनोंसे बड़ा आनन्द मिला। भूख-प्यास बहुत लग रही थी—फिर मैंने सोचा—ऐसा अमृत भोजन कहाँ मिलेगा। इसमें जो प्रेमका सुधारस भरा है, वह बड़ा ही दुर्लभ है। मैंने सानन्द स्वीकार किया। उन्होंने बड़ी तैयारी की थी, अवश्य ही वह थी उनके घरके अनुसार ही, पर थी बहुत ही बढ़िया। चावल, दाल, रूखा फुलका और एक चटनी। उक्त सज्जनकी पत्नीने कहा—'हम गरीब हैं इससे मिठाई आदि कुछ नहीं बना सके। घी तो घरमें कभी आता ही नहीं।' मैंने कहा—'मिठाई तथा घीमें जो स्वाद है, वह तो जीभभरका है।

आपकी ये चीजें तो जीवनभरके लिये भीतर मिठास भर देनेवाली हैं।' बुढ़िया माता धीरे-धीरे चारपाईसे उतरकर मेरे पास बैठ गयी थी, उनकी पुत्रवधू तो परोस ही रही थी। मेरी बात सुनते ही उन दोनोंके नेत्रोंसे आनन्द तथा स्नेहके आँसू बहने लगे। मैंने हठ करके उक्त सज्जनको तथा बच्चेको भी भोजनके लिये पास बैठा लिया। उन्होंने पाँच पत्तलें परोसीं। हम सबने बड़े आनन्दसे भोजन किया। उस पवित्र भोजनका माधुर्य सदा ही याद आया करता है। जीवनमें शायद दो-चार जगह ही इस श्रेणीका भोजन मिला होगा। उस पवित्र भोजनमें कितना स्वाद था, इसे बतानेके लिये शब्द नहीं हैं। भोजनोपरान्त मैंने उनके पास बैठकर कुछ देर घरू तौरपर बातचीत की। उनकी स्थिति पूछी तो उक्त सज्जनने बताया कि 'मुझे साठ रुपये मासिक वेतन मिलता है, इससे बहुत मजेमें हमारी गुजर हो जाती है; कोई भी कष्ट नहीं है। आवश्यकता ही ज्यादा नहीं तब कष्ट क्यों होगा? कष्ट तो अभावमें होता है।' उनकी इस बातसे उनपर मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी और मैंने कुछ शिक्षा प्राप्त की। कुछ देर बैठकर बुढ़िया माताको प्रणाम करके हमलोगोंने अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उनसे आज्ञा माँगी। उन लोगोंके आनन्दाश्रु बह ही रहे थे। उन्हीं आँसुओंकी पवित्र धाराके साथ उन्होंने हमलोगोंको विदाई दी। उक्त सज्जन बच्चेके साथ मोटरतक हमें पहुँचाने आये। इस सच्चे स्नेह एवं सुधापूर्ण भोजनकी जब-जब स्मृति होती है, तभी हृदय आनन्दसे भर जाता है और आँखें गीली हो जाती हैं।

—कल्याण-परिवारका एक सदस्य

देवी कहाँ गयीं?

कुछ समय पहलेकी घटना है। जामनगरसे लगभग पंद्रह सालका एक लड़का बम्बई गया हुआ था। एक दिन वह सबेरे ७।५५ की गाड़ीसे दादरसे बोरीवली जा रहा था। भीड़ बहुत अधिक थी। वह रेलके डिब्बेके बाहर पाटियेपर लटकता खड़ा था।

लोकल ट्रेन ज्यों ही परेल और करी रोड स्टेशनके बीच पहुँची कि उसके हाथसे पकड़ा हुआ हैंडल छूट गया और वह पूरे वेगके साथ दौड़ती हुई ट्रेनसे फेंका जाकर दूर जा गिरा।

दूसरे लोगोंकी चीख-पुकारके पहले ही गाड़ी आगे निकल गयी। लड़का फेंका जाकर सामनेकी दूसरी लाइनके ठीक बीचमें पड़ा था।

इसी समय उस लाइनपर भी दूरसे एक लोकल ट्रेन चली आ रही थी; परंतु यहाँ तो एक दूसरी ही घटना हो गयी। वह लड़का जिस डिब्बेसे गिरा था, उसीमें एक युवती मुसाफिरी कर रही थी। उसने इस दृश्यको देखते ही तुरंत साँकल खींची। इससे गाड़ीकी चाल कुछ धीमी हुई, पर गाड़ीके रुकनेसे पहले ही वह युवती नीचे कूदकर, वह लड़का जहाँ लाइनके बीचमें पड़ा था, उधर बड़े जोरसे दौड़ने लगी। ठीक इसी समय एक लोकल ट्रेन भी उसी लाइनपर आगे बढ़ी आ रही थी।

युवती और लोकल ट्रेन दोनोंकी चालमें वेग था। एक-एक पलक मूल्यवान् था। युवती लोकल ट्रेनसे पहले ही वहाँ पहुँच गयी और लाइनके बीचमें पड़े हुए लड़केको उसने उठा लिया—

बस, इसी क्षण तुरंत ही वह लोकल वहाँसे निकल गयी। उस समय कुछ क्षणों पहले ही इसी बहिनने इतना बड़ा साहस करके यदि लड़केको लाइनके बीचसे उठाकर अलग न किया होता तो उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाते……।

फिर तो कुछ दूरपर वह लोकल ट्रेन रुकी। इस बहिनने लड़केको उठाया और दूसरी कोई माथापच्ची न करके तुरंत उसे लेकर परेलकी ओर जानेवाली गाड़ीमें सवार हो गयी। गाड़ी परेलकी ओर दौड़ने लगी। चलती गाड़ीमें इस बहिनने अपनी साड़ीका छोर फाड़कर उस लड़केके घावपर बाँध दिया।

परेल आते ही वह तुरंत लड़केको लेकर नीचे उतरी और उसे परेलके अस्पतालमें ले गयी। चार बजे लड़केको होश हुआ।

लड़केकी जेबमें रेलवेका पास और उसका बम्बईका नाम-पता मिला। अतः अस्पतालकी ओरसे उसके सगे-सम्बन्धियोंको सूचना दी गयी। सगे-सम्बन्धियोंके आनेपर लड़केने चारों ओर देखा और पहला ही प्रश्न किया—'वे देवी कहाँ गयीं!'

परंतु वह तो चली गयी थी। (उसे प्रशंसा, इनाम थोड़े ही लेना था।)

(अखण्ड आनन्द)

—नरभेराम राम ठक्कर

भगवान् कब पुकार सुनते हैं?

सच्चे हृदयसे भगवान्‌को जो याद करता है, उसे वे अवश्य ही सहायता देते हैं। मुझे तो अपने जीवनमें इसका अनुभव बहुत बार हुआ और कभी-कभी तो ऐसी कठिन और विपरीत परिस्थितियोंमें हुआ कि मैं समझ ही न सका कि यह कैसे हो गया और क्षणभरमें ही कुछ-से-कुछ हुआ।

जीवनकी बहुत-सी उन घटनाओंमेंसे, जिनमें प्रभुने मेरे जीवन, मेरे मान और आत्माकी रक्षा की, एक घटना—जिसमें मुझे मृत्युके द्वारपर पहुँचकर भी कोई क्षति नहीं हुई, १९५४ के फरवरी मासमें घटित हुई। मैं आगरासे बम्बई एक्सप्रेस ट्रेनद्वारा अपने धेवतेके साथ यात्रा कर रहा था। सर्दी कड़ाकेकी पड़ रही थी, गाड़ी करीब ४।३० बजे कल्यान स्टेशनपर पहुँची। मुझे सुबह ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठनेकी आदत है। गाड़ी रुकनेपर मैंने नलपर जाकर आँखोंमें छींटे लगाकर नाकसे पानी पीनेकी क्रिया करके शौचके लिये लोटा भरा ही था कि गाड़ी सीटी देकर चल दी। जल्दीमें मैं दूसरे डिब्बेमें घुस गया और उसके शौचालयमें शौचके लिये चला गया। चार-पाँच मिनट बाद ही गाड़ी रुकी। उस समय मैं भी शौचालयसे बाहर आ गया था। यह सोचकर कि मैं एक-दो मिनटमें ही अपने डिब्बेमें पहुँच जाऊँगा, मैं उस डिब्बेसे अँधेरेमें ही उतर पड़ा और अपने डिब्बेकी ओर जाने लगा। अभी मैं मुश्किलसे पंद्रह-बीस कदम चल पाया था कि गाड़ीने सीटी दे दी और चल पड़ी। मेरे सामने एकदम एक फर्स्ट क्लासका डिब्बा आया। उसके फुटबोर्डपर लोटा रख दिया

और उसपर चढ़ गया—दोनों हाथोंसे डंडे पकड़ लिये। मैं बीचके बोर्डपर खड़ा था और केवल लँगोट तथा एक सूती सलूका पहने हुए था।

गाड़ी एकदम तेज हो गयी और मेरे शरीरको ठंडी हवा तीरकी तरह लगने लगी। मैंने पहले तो उस डिब्बेको खुलवानेके लिये खटखटानेकी सोची, किंतु तुरंत ही यह विचारकर कि फर्स्ट क्लासके यात्री इस खटखटाहटको सर्दीकी रातमें सोते हुए सुन भी पायेंगे या नहीं और यदि सुनकर कोई दरवाजा खोलने आ गया और मुझको इस हालतमें अँधेरेमें देखकर धक्का दे दिया तो जीवन ही समाप्त हो जायगा, मैं वहीं खड़ा रहा। गाड़ी और तेज होती गयी और एकके बाद एक स्टेशन आता गया, किंतु गाड़ी रुकी नहीं। एक प्लेटफार्मसे तो मेरी टाँगे बिलकुल लग गयीं और अगर बीचके बजाय नीचेके बोर्डपर मेरा पैर होता तो टाँगे कट जातीं। प्लेटफार्मके निकलते ही मैं सबसे ऊपरके फुटबोर्डपर खड़ा हो गया।

यद्यपि अब पैरोंके कटनेका खतरा न था, किंतु अब शरीरमें उस तेज दौड़ती हुई ट्रेनकी ठंडी हवाको सहन करनेकी शक्ति शनैः-शनैः कम हो रही थी और हाथ रेलके डंडोंको सावधानीसे पकड़े रहनेमें असमर्थ हो चुके थे। मुझे अब पंद्रह-बीस मिनट इस हालतमें हो चुके थे। अब मैंने एक-एक हाथको बारी-बारीसे आराम देना आरम्भ किया, जिससे मैं एक-एक हाथसे आगे कुछ देर और चल सकूँ। अब हाथोंने भी बिलकुल जवाब दे दिया। मैंने अब भगवान्से बड़े ही आर्तभावसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! अब मुझसे सहन नहीं होता और यह जीवन आपके चरणोंमें

समर्पित है।' यदि इसके बाद गाड़ी पाँच-दस सेकेंड भी और चलती तो मैं निश्चय गाड़ीसे गिर जाता और मेरा शरीर चूर-चूर हो जाता, किंतु देखता क्या हूँ कि गाड़ी एकदम जंगलमें खड़ी हो गयी। किस कारण खड़ी हुई मुझे नहीं ज्ञात हुआ। मैं तुरंत गाड़ीसे उतरा और आगे एक तीसरे दर्जेके डिब्बेमें रोशनी देखी, उसको खुलवाकर उसमें बैठ गया। मैंने निश्चय कर लिया था कि यदि गाड़ी किसी डिब्बेमें बैठनेसे पहले चल देगी तो मैं वहीं रेलवे लाइनके पास रह जाऊँगा। इस तरह भगवान्‌ने मेरे जीवनकी रक्षा की और मुझे मृत्युके मुखसे निकाल लिया।

—श्रीचन्द्र दोनेरिया

पैसेकी कीमत मनुष्यकी स्थिति और उसके मनपर निर्भर रहती है

वर्षों पहलेका प्रसंग है। एक मारवाड़ी नवयुवक जीवन-निर्वाहके लिये कामकी खोजमें बम्बई आया था। पहननेके कपड़े तथा एक लोटेके सिवा उसके पास कोई सामान नहीं था। तीन दिन यों ही भटका और फुटपाथपर सोता रहा। अन्तमें किसी परिचितको उसपर दया आयी और उसने एक सार्वजनिक धर्मशालाके ट्रस्टीके नाम पत्र लिख दिया कि 'इस गरीब लड़केको वे कामपर लगा दें।'

धर्मशालाके ट्रस्टीने उससे कहा—'कल पहली तारीख है, अतः तुम कलसे कामपर लग जाना, अभी तो जाओ। तुम्हें धर्मशालाके पहरेदारका काम करना पड़ेगा।' लड़का प्रसन्न हो गया और हाथ जोड़कर बोला—'सेठ साहेब! आपने मुझे अभी चले जानेके लिये कहा है, पर मैं कहाँ जाऊँ! आप आज्ञा दें तो मैं धर्मशालामें ही पड़ा रहूँ और कल सबेरेसे कामपर लग जाऊँ।'

सेठजीने बात मान ली। दूसरे दिन वह काममें लग गया। शामको सेठजी आये और उस नौजवानसे उन्होंने कहा—'तुम्हें क्या काम करना है, यह समझ लेना चाहिये। रोज कौन आते हैं और कौन जाते हैं—इसका ब्योरा लिख रखना। किसीको बर्तन वगैरह कुछ दिया जाय तो उसको भी लिख लेना और धर्मशालाका खयाल रखना।'

लड़केने कहा—'सेठजी! मैं धर्मशालाका ध्यान तो रखूँगा, पर लिख नहीं सकूँगा।'

सेठजी बोले—'क्यों, दिमाग जरा खराब मालूम होता है।'

'नहीं सेठजी, लेकिन मुझे लिखना-पढ़ना नहीं आता।'

'ओह! ऐसी बात है। हमें तो ऐसा आदमी चाहिये जो पहरा भी दे और सब लिख भी सके। तुम इस कामके लायक नहीं हो, तुम्हें इसी समय छोड़ा जा रहा है। तुमने आज काम किया है, इसके बदलेमें ये आठ आने नौकरीके लो।'

लड़केका मुँह लटक गया। वह जैसे ही बाहर निकला कि सेठने वापस बुलाया। नौजवानके हृदयमें आशा जगी। उसने तुरंत लौटकर पूछा—'आप मुझे नौकरीपर रख रहे हैं न? मैं हृदयसे आपका आभार मानता हूँ।'

सेठने जेबसे पैसे निकाले और कहा—'लो, यह और आठ आना, यह मैं तुम्हें अपनी ओरसे दानमें दे रहा हूँ।'

यों एक रुपया लेकर लड़का चला गया। इस रुपयेसे उसने दस दिन काम चलाया। ग्यारहवें दिन जब फाँकाकसीका अवसर आया, तब सट्टा बाजारमें एक सेठके यहाँ उसे कागज-पत्र पहुँचानेका काम मिल गया।

कुछ वर्षों बाद तो वह नौजवान बहुत बड़ा सटोरिया बन गया। बाजारमें उसका नाम गरजने लगा। विदेशोंमें भी नाम पहुँचा। वह बहुत बड़ा सफल व्यापारी बन गया।

एक बार किसी सार्वजनिक संस्थाके लिये एक नौजवान इनके पास आया और संस्थाका नाम बताकर सहायता चाही। इन्होंने तुरंत एक लाख रुपये दे दिये। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने जाकर अपने पितासे यह बात कही तब वे गद्गद कण्ठसे कहने लगे—'बेटा! ऐसे पुरुषका तो खूब सम्मान करना और इन्हें

मानपत्र देना चाहिये। कल मैं तुम्हारे साथ चलकर सेठको समझाऊँगा।'

दूसरे दिन दोनों पिता-पुत्र सेठके पास गये। सेठ वृद्ध पुरुषकी ओर देखते रहे। वृद्धने कहा—'मैंने उम्र बड़ी होनेके कारण इस संस्थाके देख-रेखका काम छोड़ दिया है। अब मेरे पुत्रने इस कामको सँभाल लिया है। आपने एक लाख रुपये दिये, इससे मुझे बड़ा आनन्द मिला और मैं आपके दर्शन करने आ गया। हमलोगोंने आपको मानपत्र देनेका निश्चय किया है और आपको भी भाषण देना पड़ेगा। आप अपना भाषण लिख दें तो उसे पहलेसे छपवा लिया जाय। हम आपके भाषणको रेकार्डमें भी भर लेना चाहते हैं।'

सेठने कहा—'इतनी छोटी-सी बातके लिये इतना सब करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मैंने तो कुछ किया ही नहीं है। अब आप स्वयं आये हैं तो मैं आपको ये एक लाख रुपये और देता हूँ। इन्हें आप अपने इच्छानुसार दानमें लगाइये।'

सेठने तुरंत ही तिजोरीमेंसे निकालकर एक लाखके नोट वृद्धके हाथोंपर रखते हुए कहा—'इसमें कोई उपकार नहीं है, यह तो मैंने अपना हिसाब चुकता किया है।'

'तो आप क्या कहना चाहते हैं?' वृद्धने पूछा।

'मैं यह कहना चाहता हूँ कि बहुत वर्षों पहले जब मैं इस शहरमें आया था तब आप जिस संस्थाकी बात कर रहे हैं, उसमें मैंने एक दिन नौकरी की थी और उसके मेहनतानेके आपने आठ आने मुझको दिये थे। मुझे लिखना-पढ़ना नहीं आता था, इसलिये आपने मुझको नहीं रखा। उन आठ आनेके बदलेमें इस

संस्थाको मैंने लाख रुपये दिये हैं। नौकरीसे अलग करनेके बाद आपके हृदयमें मेरे प्रति दया-भावका संचार हुआ और आपने मुझे वापस बुलाकर अपनी जेबसे आठ आने दानस्वरूप दिये थे। उसके बदले ये एक लाख रुपये मैं आपको दे रहा हूँ। संस्थाके संस्थाको दे दिये और आपके आपको।'

वृद्ध पुरुषकी आँखें छलक आयीं। उन्होंने कहा—'सेठ! आपने बहुत बड़ा बदला दिया।'

'यहाँ भी आप भूलते हैं। पैसेकी कितनी कीमत है, यह मनुष्यकी स्थिति और उसके मनपर निर्भर करती है। किसी एक गरीबके लिये आठ आने पैसे उसकी सर्वस्व पूँजी बन जाते हैं और एक बड़े धनीके लिये लाख रुपये आठ आनेके बराबर होते हैं। आपकी और ईश्वरकी कृपासे मुझे धन मिला है, इसलिये ये दो लाख रुपये देकर मैंने सिर्फ हिसाब ही चुकता किया है। आप भाषण देनेकी बात कहते हैं, सो मैं भाषण देना नहीं जानता। मैंने कामचलाऊ लिखना-पढ़ना सीख लिया है। वैसे मुझे कुछ नहीं आता।' सेठने कहा।

वृद्ध पुरुष बोले—'अच्छा तो आपके नामकी तख्ती लगा दी जाय?' 'नहीं, ऐसा करनेकी जरूरत नहीं है। इससे मैं स्वयं मुश्किलमें पड़ जाऊँगा।'

'कैसे?'

'इन्कमटैक्सके अधिकारी मुझे परेशान कर डालेंगे। मैं ब्रिटिश सरकारको टैक्स न देकर देशके काममें धन खरचता रहता हूँ।' —('बीज')

सहानुभूति

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है—बम्बईमें रामदास नामक एक सज्जन नौकरीके पैसे लेकर घर लौट रहे थे। रामदास गृहस्थ थे। घरमें छः आदमी थे। वे एक व्यापारी फार्ममें ढाई सौ रुपये मासिककी नौकरी करते थे। कठिनतासे खर्च चलता था, महीनेकी अन्तिम तारीखको जब वेतनके पैसे मिलते, तब वे महीनेभरका अनाज, दूध, दवा, धोबी आदिका हिसाब चुकता करके आश्वासन प्राप्त करते। आज रुपये लेकर जा रहे थे—रास्तेमें उनके गाँवका एक परिचित आदमी मिला। रामदासने उसको उदास देखकर उदासीका कारण पूछा। वह रो पड़ा और बोला कि 'मेरी स्त्रीके पेटमें फोड़ा होकर अब सेप्टिक हो गया है। वह मरणासन्न है। डॉक्टरने ऑपरेशनके लिये कहा है, उसमें ढाई सौ रुपयेका खर्च है और मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। स्त्री मर जायगी तो बच्चे अनाथ हो जायँगे। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।'

रामदासने तुरंत जेबसे ढाई सौके नोट निकाले और उसके हाथपर रखते हुए कहा—'भाई! ले जाओ, तुरंत ऑपरेशनकी व्यवस्था करो।' वह आदमी रामदासकी स्थितिसे परिचित था। उसके न तो रामदाससे रुपये मिलनेकी कल्पना थी, न उसने उससे माँगे ही थे। उसने लेनेसे इनकार कर दिया, पर बड़ी विनय करके रामदासने उसको रुपये लेनेको बाध्य किया।

घर आकर पत्नीको सब बातें कहीं तो वह साध्वी बड़ी ही प्रसन्न हुई। उसने पतिके कार्यकी प्रशंसा करते हुए अपने गलेका हलका-सा सोनेका हार उतारकर पतिको दिया कि जाकर इसे अभी बेंच आइये। किसीको पता न लगे कि ये अनाज-दूधके पैसे समयपर नहीं चुका सके। रामदास तो गद्गद थे।

—गोपाललाल गुप्त

पुलिसकी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता

यह घटना कुछ वर्ष पुरानी है। प्रभासपाटन (सोमनाथ) 'समाज-कल्याण-केन्द्र' के एकाउन्टेंट श्रीमंगलप्रसाद जूनागढ़ बैंक आफ सौराष्ट्रमेंसे साढ़े बारह हजार रुपये लेकर निकले। उनकी बेजानकारीमें नोटोंका बंडल नीचे गिर गया। उन्हें पता नहीं लगा। वे चले गये।

कुछ समय बाद मगनलाल होतचन्द ललवानी नामक पुलिसका एक सिपाही उधरसे निकला। उसको बंडल पड़ा दिखायी दिया। उसने उठाकर देखा तो उसमें साढ़े बारह हजार रुपयेके नोट थे। इतनी बड़ी रकम देखकर भी उसका मन नहीं चला और वह नोटोंके मालिकका पता लगाता हुआ बैंकमें पहुँचा।

उधर एकाउन्टेंट श्रीमंगलप्रसादको जब रुपये गिर जानेका पता लगा तो वे भी घबराये और नोटोंको खोजते हुए बैंकमें पहुँचे।

अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर लेने और यह जान लेनेपर कि ये रुपये इन्हीं सज्जनके हैं, गरीब पुलिसके सिपाहीने साढ़े बारह हजार रुपये उनको सँभला दिये। श्रीमंगलप्रसादको कितना सुख हुआ और उनसे भी अधिक कर्तव्यपरायण गरीब तथा ईमानदार सिपाहीने कितना आनन्द लाभ किया। इसको तो वे ही जानते हैं।

इस घटनाका पता जब जूनागढ़के डी० एस० पी० महोदयको लगा तो उन्हें अपने सिपाहीकी कर्तव्यपरायणता और ईमानदारीपर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने मगनलालको बुलाकर शाबाशीके

साथ ही दो सौ रुपये इनाम दिये।

सिपाहीने कर्तव्यपालन ही किया, कोई खास महत्त्व नहीं। पर आजके बिगड़े युगमें जहाँ पैसा ही परमेश्वर है—इतना लोभ-संवरण बड़े ही महत्त्वकी बात है। हमारी पुलिसके सभी कर्मचारी ऐसे ही हों।

—मकनदास नरसीदास

स्वप्नवत् संसार

सम्भवतः सन् १९३४ की बात है जब कि पूर्वी भारतके बिहार, बंगाल एवं आसाम प्रदेशोंपर भूकम्पका भयंकर प्रकोप हुआ था। इस विभीषिकासे सम्पूर्ण देश त्रस्त हो उठा था। समस्त समाचार-पत्र भूकम्पके प्रलयंकर समाचारोंसे भरे रहते थे।

उन दिनों काशीके एक मठमें संस्कृतका अध्ययन करनेवाले कुछ विद्यार्थी साधुओंने भी भूकम्पके समाचार पढ़े और पीड़ितोंके सहायतार्थ वे आसाम जा पहुँचे।

विनाशके इस भयानक वातावरणमें काशीके विद्यार्थियोंने एक ऐसे व्यक्तिको भी देखा, जो अव्यवस्थित-सा दिखायी दे रहा था। विद्यार्थियोंने कहा—'सेठजी! ऐसा प्रतीत होता है कि आपके घरमें सभी प्रसन्न हैं, किसीका बाल भी बाँका नहीं हुआ है।'

सेठजी बोले—'आप जानना चाहते हैं तो सुनिये—आजसे तीस वर्ष पूर्व मैं राजपूतानेसे यहाँ आया था खाली हाथ। प्रारम्भमें कुछ वर्ष मैंने यहाँ नौकरी की, फिर साझेमें काम किया, बादमें अपना स्वतन्त्र व्यवसाय चालू किया; चार-पाँच लाख रुपया भी कमाया और मुझे लोग 'सेठजी, सेठजी' कहने लगे।'

'इसी बीच मेरी शादी हुई, बाल-बच्चे हुए और ईश्वरकी कृपासे मुझे किसी भी पदार्थका अभाव नहीं रहा। परंतु लाखों रुपये कमाकर भी मेरे मनमें उनके प्रति कभी मोह उत्पन्न नहीं हुआ। स्त्री-पुत्र पाकर भी मैंने उनमें कभी ममता नहीं रखी। खजांचीकी तरह रुपयोंको पराया समझा और प्रभुके प्राणी

समझकर स्त्री-बच्चोंका पालन किया।'

'जब यह भूकम्प आया, उससे चार दिन पहले मैं दूसरे गाँव गया हुआ था। वापस आया तो देखा कि अपना मकान पहचानना भी कठिन हो रहा है। मकान तो अब है ही कहाँ, धूलका ढेरमात्र है और अनुमान यह है कि स्त्री-बच्चे मलबेके नीचे दबकर मर गये। पर यह अनुमान कोरा अनुमानमात्र नहीं, अक्षरशः सत्य है। स्त्री-बच्चे जीवित होते तो वे आज हमारे बीच होते; और इतने मलबेको हटाकर उनकी लाशें प्राप्त करना भी असम्भव-सा ही प्रतीत होता है।'

यह सुनकर साधु विद्यार्थियोंकी आँखें गीली हो गयीं। 'रोनेकी क्या बात है?' सेठजीने कहा—'एक धोती और एक लोटा आज भी मेरे पास है और इन्हें लेकर मैं गाँव लौट रहा हूँ। जब सारा संसार ही स्वप्नवत् है तो इसमें चिन्ताकी क्या बात है!'

यह सुनकर साधुओंने मन-ही-मन सेठजीको श्रद्धाके सुमन चढ़ाये। जब सेठजी चले गये तब साधु आपसमें बात करने लगे—'ऐसा गृहस्थ तो साधुओंके लिये भी आदर्श है।'

वास्तवमें इष्ट-वियोग और अनिष्ट-योगके कारण दुःखानुभूति होती है, परंतु यदि हम सांसारिक पदार्थोंके साथ अपनत्वका नाता जोड़ें ही नहीं तो इष्ट-वियोग और अनिष्ट-योग भी हमको विचलित नहीं कर सकेंगे। माना कि ऐसा करना कठिन है, किन्तु असाध्य नहीं है।

—श्रीलाल नथमल जोशी

सुन्दरकाण्डका अद्भुत चमत्कार

यदि किसी भी वस्तुमें विश्वास किया जाय तो उसका उत्तम फल प्रत्यक्ष ही प्राप्त होता है, इसकी पुष्टि हालमें ही घटित एक घटनासे हुई है। स्थानीय केन्द्र पंचायत, शाजापुरके मन्त्री श्रीहरविलास बंसलके द्वादशवर्षीय पुत्र राधेश्यामके एक साइकिल-सवारकी असावधानीसे हाथकी हड्डी टूट गयी। तुरंत ही चिकित्सालयमें नये सर्जन साहबद्वारा उसका एक्स-रे लिया जाकर प्लास्टरका पट्टा चढ़ा दिया गया। लोगोंके तथा पुलिसके बार-बार कहनेके बावजूद भी श्रीबंसलने थानेपर साइकिल-सवारके नामकी रिपोर्ट दर्ज करानेसे इनकार कर दिया।

किंतु जब बालकके हाथका दर्द बढ़नेसे वह रोने-चिल्लाने लगा, तब श्रीबंसलने जो अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति हैं, तुरंत ही रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। आप मानें या न मानें, कुछ ही मिनटोंमें बालकका दर्द काफूर हो गया और वह हँसता-खेलता नजर आया। यह विश्वासका ही अद्भुत चमत्कार था। नगरमें इस घटनासे बड़ा आश्चर्य है।

—बी० एल० शर्मा, शाजापुर

हड्डी और मांसके नासूरकी अनुभूत दवा

शरीरके किसी हिस्सेमें पुराना घाव हो जानेपर उसकी हालत खराब हो जाती है, नासूर बन जाता है। उसके सेप्टिक हो जानेका डर रहता है। ऐसी अवस्थामें उस हिस्सेको काटकर निकाल देनेके सिवा और इलाज प्रायः नहीं बताया जाता। ऐसे ही नासूरकी यह अचूक दवा है—

गायका मक्खन (दहीको मथकर निकाला हुआ) एक छटाँक किसी काँसीकी बड़ी थालीमें रखकर उसे स्वच्छ पानीसे १०८ बार खूब धो लीजिये। (यह मक्खन विषवत् हो जाता है, इसे खाना नहीं चाहिये।) इसमें एक तोला काला सुरमा और एक तोला सफेद सुरमा—अच्छी तरह खूब महीन पीसकर मिला दीजिये। बस, दवा तैयार है। इस मरहमको थालीके एक किनारे इकट्ठा करके उस किनारेके नीचे कोई चीज रखकर उसे ऊँचा कर दीजिये। दो-तीन घंटेमें सारा पानी बूँद-बूँद करके निकल जायगा।

फिर, नीमके पत्ते उबालकर उस पानीसे घावको धो लें। तदनन्तर फलालेन या किसी मुलायम कपड़ेको नासूरके बराबर काटकर उसपर मरहम लगाकर नासूरपर रख दें। उसपर रूई रखकर प्लास्टिककी पट्टीसे चिपका दें। नासूरको सिर्फ शुरूमें एक बार धोना है। फिर प्रतिदिन एक बार मरहम लगाकर पट्टी बदल देनी है। १५-२० दिनोंमें नासूर ठीक हो जायगा।

—हरिश्चन्द्र अग्रवाल, पो० कैमरी (हिसार)

परदुःखकातरता और उदारता

मेरी दादीका देहान्त हुए बहुत दिन हो गये। पर उनकी पवित्र स्मृति मुझे बनी ही रहती है। बुद्धिमत्ताके साथ सरलता, उदारताके साथ मितव्ययिता, स्वाभिमानताके साथ विनय, साधु-सेवाके साथ सावधानी, सहिष्णुताके साथ परदुःखकातरता—सभी एक-से-एक विलक्षण गुण थे उनमें। वे बड़ी ही निर्भीक और आस्तिक थीं। भगवान्‌की सत्ता तथा कृपापर उनका अटूट विश्वास था। बड़े-बड़े कष्टोंको उन्होंने बड़ी सरलता और साहसके साथ सहन किया था। उनकी परदुःखकातरता तथा उदारताका एक प्रसंग यहाँ लिखा जा रहा है। उन दिनों व्यापारमें कुछ ढिलाई थी। मेरी बूआकी एक लड़कीका ब्याह था। विवाहका भार प्रायः हमारे ही ऊपर था। पिताजी चिन्तित थे। किसी प्रकार पाँच हजार रुपयेकी व्यवस्था हुई। विवाहके दिन बहुत समीप थे। रुपये दादीके पास थे। उन्हींको सारी व्यवस्था करनी थी। उनमें इतना तेज था कि अपने घरमें ही नहीं, दूरके सम्बन्धीतक बड़े सम्मानके साथ उनका शासन मानते थे। इसी अवसरमें एक दूर-सम्पर्कीय सम्बन्धीके घरकी एक महिला दादीके पास आयी । उसके कारोबारमें घाटा लग गया था। उसने दादीसे सारी बातें कहीं। दुःखियोंका दुःख सुननेमें दादीजी बड़ी दिलचस्पी रखतीं, बड़ी ही सहानुभूतिके साथ उनके दुःखकी बातें सुनतीं। दादीने सब बातें सुनीं। उसको पाँच हजार रुपयोंकी जरूरत थी। उसके पतिने स्वयं न आकर अपनी पत्नीको इसीलिये दादीके पास भेजा था कि दादीका दयालु हृदय सुनते

ही द्रवित हो जायगा और वे किसी तरह व्यवस्था कर देंगी। उस महिलाने बड़े करुण स्वरसे कहा—'ताईजी! आप व्यवस्था न करेंगी तो हमारी बाप-दादोंकी इज्जत चली जायगी।' दादीका हृदय द्रवित हो गया। पर उधर वह ब्याहका कार्य भी बहुत ही आवश्यक था। दादीने उससे कहा—'अपने पतिको अभी बुला लाओ।' वह तुरंत बुला लायी। उनके आनेपर दादीने उन्हें आश्वासन दिया और तिजूरी खोलकर अपना गहना निकाला। पाँच हजार रुपये नगद निकालकर उन्हें दे दिये और साथ ही अपना गहना देकर कहा कि 'आप इस गहनेको गलाकर सोना कर लीजिये और उसे बेचकर रुपये तुरंत मुझे ला दीजिये।' वे बेचारे गद्‌गद हो गये। मन तो बहुत सकुचाया, पर उन्होंने पाँच हजार रुपये लेकर अपना भुगतान किया और गहना बेचकर तीन हजार आठ सौ रुपये दादीको ला दिये। दादीने कहींसे बारह सौ रुपये उधारकी व्यवस्था की और हमारी बूआकी लड़कीका ब्याह भलीभाँति सम्पन्न कराया।

इस घटनाका पता चार साल बाद तब लगा, जब वे सज्जन रुपये लौटानेको आये। तब दादीने पिताजीको यह सब बतलाया।

—दादीका पाला-पोसा पौत्र

भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष दर्शन

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

इस श्लोकका पाठ करते जीवनके इतने वर्ष बीत चुके, किन्तु इसकी अनुभूति इस वर्ष १४ सितम्बर १९६१ को ही हो सकी। कलकत्तेमें १२ सितम्बर १९६१ को मेरा रक्तचाप यहाँतक बढ़ा कि शरीरके अधोभागमें नाड़ीयन्त्रकी गति अवरुद्ध हो गयी। पैर पंगु हो गये। डॉक्टरोंने बोलनेपर रोक लगा दी। मृत्युकी विभीषिका आँखोंके सामने खड़ी थी। ज्योतिष्पीठाधीश स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वती एवं स्वामी श्रीदेवनायकाचार्य काशीके देहावसानके दुःखद दृश्य रह-रहकर याद आ रहे थे। श्रीमद्‌भागवतके श्रोता महाराज परीक्षित्‌के समक्ष निश्चित-रूपसे सात दिनका समय तो था और यहाँ अगली घड़ीका पता न था। फिर श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्‌के सान्निध्यमें अष्टोत्तरशत श्रीमद्भागवत-पारायण महायज्ञमें १४ सितम्बरसे वक्ताका आसन ग्रहण करना था।

समय आया। लोग उठाकर ले गये। व्यासपीठपर शरीरको आसीन किया गया। दशा दर्शकोंतकके लिये दुःखदायिनी थी। कथारम्भका योग आते ही आँखें बन्द हो गयीं। वाणी मूक हो गयी। मनकी स्थिति विचित्र हो उठी। ऐसा लगा कि मानो भाग्यने जवाब दे दिया हो और पुरुषार्थ साहस खो चुका हो। सारे भौतिक प्रयास व्यर्थ गये। तब अध्यात्मवादका चमत्कार

सामने आया। वाणी खुली और स्पष्ट अनुभव हुआ कि स्वयं प्रभुने शरीरका पूरा नियन्त्रण एवं संचालन अपने हाथोंमें ले लिया है। सप्ताह-प्रवचन-पर्यन्त यह चमत्कार चलता रहा और बुद्धि अलग बैठी प्रभुकृपाका आनन्द लेती रही।

—जगद्‌गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीराघवाचार्यजी महाराज

अतिथिदेवो भव (भीलका आतिथ्य-प्रेम)

एक बार अपने भ्रमण कार्यक्रमके समयमें मैं अपने एक साथीके साथ रास्ता भूल गया। जोवट तहसीलकी बात है यह। मनमें तरह-तरहकी कल्पनाएँ उठने लगीं। धीरे-धीरे भगवान् भास्कर भी पश्चिमकी गोदमें जा छिपे। इससे हम दोनों ही अधिक घबरा उठे। अन्धकार बढ़ता ही जा रहा था। साथ ही सघन वन बीतनेका नाम ही नहीं लेता था। केवल एक सँकरी पगडण्डीपर हम अपने कदम बढ़ाते जा रहे थे।

× × × ×

एकाएक हमें पास ही कुत्ते-भोंकनेकी आवाज सुनायी दी। अब हमें कुछ हिम्मत बँधी। हम दोनों उसी ओर बढ़े। कुछ आगे बढ़नेपर प्रकाश दिखायी पड़ा, हमारी जानमें जान आयी। हम कुछ ही देर बाद एक पर्णकुटीके सामने थे। हमें उसी ओर आते देख कुत्ता जोर-जोरसे भोंकने लगा। कुत्तेको जोरसे भोंकते देख मकानमालिक बाहर निकला। शायद वह शराब पिये था, क्योंकि उसके बाहर निकलते ही एक प्रकारकी दुर्गन्ध आने लगी। उसने वहींसे पूछा—'कूण छे रे' (कौन है रे) ?

मैंने कहा—'बाबा! ये तो हम हैं रे, रात काटवानी छे रे, थारे अँई' (बाबा हम हैं, तेरे यहाँ रात काटनी है)।

'तमु काना हो' (तुम कहाँके हो) ?

'हम तो बाबा पाराके हैं', हम दोनों बोले।

'तेर आओ भई, आवे आ हुई रो' (तो भाई आओ, यहाँ सो रहो)। वह जोरसे हँस पड़ा।

हम दोनों अन्दर चले गये। उसने दो खाटें लाकर डाल दीं और फिर पूछा—'बाबा! तमू कुण छो रे' (बाबा! तुम कौन हो)! मैंने हँसते हुए कहा—'मामा! हमू तो बामुण छे रे' (मामा! हम तो ब्राह्मण हैं रे)।

फिर कुछ देर वह कुछ नहीं बोला, अन्दर चला गया। वह कुछ देर बाद आकर बोला—'तेर माराज रोटी बणा लो'। (तो महाराज! रोटी बना लो) हम बोले—'नहीं भाई, हमें भूख नहीं है।' फिर भी वह बहुत देरतक जिद करता रहा। लेकिन जब हम किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुए, तब उसने तीन सीताफल और एक टोकनी जंगली पके बेर लाकर हमारे सामने रख दिये। हमने पहले तो इनकार किया, परंतु वह नहीं माना तो हमने खा लिये। फिर इधर-उधरकी बातें होती रहीं और वह भूमिपर लेट गया। हम भी भयमिश्रित मनसे खाटोंपर सो गये।

× × × ×

'बाबा राम राम' 'राम राम भाई'

उसने प्रातः हमसे राम-राम किया, प्रत्युत्तरमें हमने भी राम-राम किया। फिर वह बोला 'चास-बास (चाय-बाय) बणा लो।' हमने कहा, 'भई, हम तो चाय-बाय नहीं पीते हैं। अच्छा बैठो, हम चलते हैं। तो वह बोला—'वाह रे तमू खूब उसताद हो, म्हारे घेर खावानो नी कर्‌यो, खावा करीने जावानो छे' (वाह, तुम भी खूब उस्ताद हो, मेरे घर भोजन नहीं बनाया, भोजन बनाकर जाना)।

हमने बहुत ना-नकर की, परंतु वह भोला प्राणी नहीं माना। उसने अपने बच्चोंको दौड़ाकर पलासके पत्ते मँगवा दिये। बेटेकी

बहूको कहकर एक पीतलका घड़ा पानी मँगवा दिया और बर्तन साफ करा दिये।

हमने मक्कीके आटेके पानिये और तुवरकी दाल बनायी। उसने, उसके बच्चोंने, सभीने वह भोजन किया। गरीबकी अतिथिके प्रति श्रद्धा देखकर मैं चकित रह गया।

भोजन करके हम चलनेको हुए। मैंने और मित्रने एक-एक रुपया उसके बच्चोंको दिया तो वह नाराज हो गया और बोला—'बाबा! आ तो भूँड़ी बात छे रे' (बाबा, यह तो बुरी बात है)।

उसने वे रुपये लौटा दिये। हमने बड़ी विनय की, किंतु उसने नहीं लिये। बच्चोंको भी भगा दिया। हम वहाँसे चल दिये अपने गन्तव्य पथकी ओर।

× × × ×

दिन-रात नशेमें चूर रहनेवाले, गरीबी और अभावोंमें पले, मौतको मामूली बात समझनेवाले, बात-बातपर मर मिटने और मार डालनेको प्रस्तुत भीलोंमें भी अपने अतिथिके प्रति कितनी आत्मीयता रहती है। मैंने उस दिन यह समझा कि भारतीय संस्कृति आज इन्हीं भोले प्राणियोंके दमपर ही टिकी है।

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी

कृतज्ञता

मध्यप्रदेशके अन्तर्गत रायगढ़ एक जिला है जो देशी राज्योंके विलीनीकरणके पूर्व एक छोटी-सी रियासत थी। कुछ वर्ष पूर्वकी बात है। उन दिनों राजा चक्रधरसिंह वहाँके राजा थे। रायगढ़ शहरसे लगभग पाँच मीलपर आमापाली नामके एक गाँवमें आराकसिया लोग (लकड़ी चीरनेवाले) आरेसे लकड़ी चीर रहे थे। समय होनेपर आधी चीरी हुई लकड़ीके बीच एक मेखा (छोटी लकड़ी) डालकर चले गये थे, जिससे पुनः काममें आनेपर लकड़ीके बीच आसानीसे आरा डाला जा सके। उनके चले जानेके कुछ देर बाद वहाँ एक बन्दर आया और उस चीरी जानेवाली लकड़ीपर बैठकर उस मेखासे खेलने-सा लगा। खेल-ही-खेलमें कौतुकवश उसने उसे उखाड़ दिया। फलतः उसकी पूँछ चीरी हुई लकड़ीके बीच फँस गयी और वह दर्दसे चिल्लाने लगा। पास ही गाँव था। लोगबाग आ गये। लोगोंने चीरी हुई लकड़ीको फैलाया। बन्दरकी फँसी हुई पूँछ निकल गयी और बन्दर उछलकर भागा। पर जाते समय उन निकालनेवाले आदमियोंमेंसे एककी पगड़ी लेकर भागा। पगड़ी क्या थी पाँच हाथकी धोती थी, जिसे उधरके ग्रामीण काम करते समय सिरपर लपेट-से लेते हैं। लोगोंने समझा बन्दर भी कितना बदमाश निकला कि अपनी सहायता करनेवालेकी पिछौरी (पगड़ी) ही वह ले भागा।

पर एक दिन जब आराकसिया (आरासे लकड़ी चीरनेवाले) लकड़ी चीर ही रहे थे कि वही बन्दर फिर आया और एक

पोटली गिराकर भाग गया। यह वही कपड़ा था जिसे बन्दर ले गया था और उसमें लड्डू बँधे थे चिरोंजीके—मधुसे पगे हुए।

बन्दरकी कृतज्ञता देख सब हैरान रह गये। दो वर्ष पूर्व जब मैं छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसाकी लोककथाओं (Folk-tales)-का संग्रह कर रहा था, उसमें एक बन्दरकी एक करुण कहानी भी थी। उसे जब मैंने अपने मामा श्रीश्यामसुन्दर कोकाको दिखाया तो उन्होंने उपर्युक्त कृतज्ञताकी सच्ची घटनाका उल्लेख किया। श्रीकोकाजी रायगढ़में ही अध्यापक हैं और धार्मिक व्यक्ति हैं।

—महादेवलाल बरगाह, एम्० ए०

एक अभूतपूर्व सत्य घटना

शिवपुरी मध्यप्रदेशमें शंकरभगवान्‌के अनन्य उपासक एवं महान् भक्त श्रीप्रह्लाददास खण्डेलवाल वैश्यके निधनकालके समय एक अभूतपूर्व सत्य घटना घटित हुई है।

दिनांक २२ अक्टूबर १९६१ रविवारको श्रीसिद्धेश्वर मन्दिर-स्थित शिवपुरीमें एक संन्यासी महात्माने उक्त भक्त श्रीप्रह्लाददासजीको कहा कि मुझे रात्रिको स्वप्न हुआ कि तुमको शंकरभगवान्‌ने बुलाकर अपनी गोदीमें बिठा लिया है। यह सुनकर उपस्थित सज्जनोंको आश्चर्य हुआ, परंतु भक्तजी प्रसन्नमुद्रामें हँस पड़े और कहने लगे कि मेरी यही तीव्र अभिलाषा है।

ठीक एक सप्ताहके उपरान्त दिनांक २९ अक्टूबर १९६१ को उक्त भक्तजी श्रीप्रह्लाददासजी दैनिक नित्य-नियमके अनुसार शंकरभगवान्‌की पूजाके हेतु श्रीसिद्धेश्वर-मन्दिर पहुँचे और पूर्वकी भाँति ही उन्होंने पीताम्बर वस्त्र पहनकर रुद्राक्षकी माला गलेमें डालकर पूजाकी सामग्री सँजोकर शंकरभगवान्‌के समक्ष पहुँचे। वहाँ शंकरभगवान्‌की प्रतिमाके समक्ष हाथ जोड़कर दण्डवत् करते ही अपने प्राण त्याग दिये। ध्यान रहे उक्त भक्तजी मृत्युके पूर्व पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त थे।

उक्त भक्तजी श्रीप्रह्लाददासजी खण्डेलवाल शिवपुरी नगरके एक प्रतिष्ठित महान् धार्मिक, परोपकारी तथा साधुसेवी एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्होंने अपने जीवनके हर क्षणको शंकरभगवान्‌को अर्पण कर दिया था। उन्होंने अपनेको शंकरभगवान्‌के

समक्ष आत्मसमर्पण करके कलियुगमें शंकरभगवान्‌की आराधनाकी सत्यताको प्रमाणित कर दिखाया है। इस समय उनके इस प्रकारके निधनसे शिवपुरी जिले एवं समीपवर्ती क्षेत्रोंमें अधिक चर्चा है तथा श्रीसिद्धेश्वरभगवान्‌की ओर लोगोंकी आस्था अधिक बढ़ गयी है।

—मदनलाल गुप्ता खण्डेलवाल, वकील

पत्नीने पतिका ऋण चुकाया

श्रीरामप्रतापजी मेरे पतिके सहपाठी थे और मित्र थे। कभी-कभी हमारे घरपर आया करते थे। मेरे स्वामीका भी उनके प्रति काफी स्नेह था। वे एक पाठशालामें शिक्षकका काम करते थे। गरीब थे। कुछ ही दिनों पहले उनका देहान्त हो गया। मैं उनकी विधवा पत्नी गुलाबबाईके पास जानेवाली थी, पर कार्यवश नहीं जा सकी। एक दिन रात्रिको गुलाबबाई स्वयं ही मेरे पास आयीं। उन्हें देखकर मैं सकुचा गयी। सोचा गुलाबबाईने समझा होगा—'यह धनी घरकी स्त्री मेरे पास क्यों आने लगी।' मैंने उठकर आदरसे उनको बैठाया और श्रीरामप्रतापजीकी मृत्युपर दुःख तथा सहानुभूति प्रकट करते हुए क्षमा माँगी। मैंने कहा—मैं आ ही रही थी, पर अमुक कामसे नहीं आ सकी। क्षमा करना—पर आप आज कैसे आयी हैं—बताइये।'

गुलाबबाईने आँसू पोंछकर कहा—'बहिनजी! आपकी तो मेरे प्रति सदा ही प्रीति है। आप काम-काजमें नहीं आ सकीं, इससे क्या प्रीति कम थोड़े ही हो गयी? वह तो मेरे भाग्यमें जो बदा था सो हो गया। आपका किशोर इंजिनियरिंगमें है। आपलोगोंके आशीर्वादसे वह साल-दो-सालमें कमाने लगेगा। फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं रहेगी।' इतना कहकर उन्होंने बारह सौके नोट मेरे सामने रखकर कहा—"बहिनजी! आज तो मैं एक कामसे आयी हूँ। आप जानती हैं—आपके स्वामी श्रीगोपालबाबूकी उनपर बड़ी प्रीति थी। गोपालबाबूका हार्टफेल होकर देहान्त हो गया, तभीसे वे बीमार थे। इसीसे यह काम अबतक हो नहीं

पाया। जिस दिन उनका शरीर छूटनेको था, उस दिन उन्होंने मुझसे कहा—'भाई गोपालजीके मुझको बारह सौ रुपये देने हैं, उनका देहान्त हो गया है। उनकी पत्नीको इन रुपयोंका पता नहीं है। रुपये मैंने समय-समयपर किशोरकी पढ़ाईके कामसे लिये थे। पर मैं उन्हें अभी वापस दे नहीं सका। ये रुपये अवश्य चुकाने हैं। तुम्हारे पास कुछ गहना है, उससे अपना काम चलाना। किशोर कमाने लगेगा, तबतक तुम्हारा काम गहनेसे चल जायगा। मेरे प्रोविडेंट फण्डके शायद चौदह सौ रुपये आवेंगे। मैंने लिख दिया है वे तुमको मिल जायँगे। मिलते ही उसी दिन तुम भाई गोपालजीकी पत्नीको रुपये दे आना। वे न लेना चाहें तो उन्हें मेरी शपथ दिलाकर कहना कि उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ही आप ले लें। तदनुसार मैं ये रुपये लेकर आयी हूँ। रुपये आज ही मिले हैं। आप दया करके रुपये लेकर हमें ऋणमुक्त करें।'' मैं तो दंग रह गयी, उनकी बात सुनकर। हाथमें तंगी होनेपर भी ऋण चुकानेमें इतनी त्वरा! मैंने बहुत समझाया। रुपये लेनेसे इनकार किया, मुझे पता भी नहीं था। पर वे मानी नहीं। इस प्रकार आर्त होकर रोने लगीं कि मुझे उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी। धन्य!

यह घटना कुछ वर्ष पहलेकी है। उनका लड़का अब अच्छी कमाई कर रहा है। उसकी शादी भी हो गयी है। मजेमें है। पर मेरे हृदयपर उनकी जो छाप पड़ी, वह सदा अमिट रहेगी।

—रामप्यारी देवी

छात्रका कर्तव्यपालन

मैं 'राजा प्यारीमोहन कॉलेज, उत्तरपाड़ा' की एक छात्रा हूँ। आज मैं एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ जिसकी सत्यवादितापर कॉलेजके प्रधानाचार्यको पर्याप्त हर्ष एवं गौरव है।

घटना इस प्रकार है। ता० ३०-९-६१, शनिवारको मेरी रिस्टवाच जो ३५० रुपयेकी थी, न जाने कहाँ कॉलेजके प्रांगणमें गिर गयी। घड़ी एकदम नयी थी। भय एवं शोकके साथ मैंने अपने बड़े भाईसे सारी बात बतायी। वे तथा उनके मित्र सभी घड़ी खोजने लगे। प्रिंसिपलके द्वारा सूचना-बोर्डपर सूचना दे दी गयी; पर घड़ी न मिली। प्रायः एक घण्टेके बाद एक छात्र अपने हाथोंमें घड़ी लिये मेरे भाईके पास आये। घड़ी देखकर सबके सामने मेरे भाईने उसे लेना चाहा; पर उन्होंने प्रिंसिपलके सामने देनेको कहा और वे भाईके साथ ऑफिसमें गये। घड़ी पाकर प्रिंसिपल बहुत प्रसन्न हुए। प्रिंसिपल महोदयने उनको उनकी सत्यवादितापर कॉलेज कैंटिनमें खिलाना चाहा; पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया, इन शब्दोंके साथ कि 'धन्यवाद, खिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं। यह तो मैंने अपना कर्तव्यपालन किया है। मुझे आशीर्वाद दें कि मैं सदा इसी तरह सत्य एवं ईमानदारीपर चलता रहूँ।'

प्रिंसिपल काफी प्रसन्न हुए। प्रायः ५०० विद्यार्थियोंके बीच उनसे हाथ मिलाते हुए ऑफिससे बाहर आये और पीठ ठोंकते हुए बोले—हमें आज ऐसे ही विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है। इनका नाम—श्रीराममूर्तिसिंह, बी० एस्-सी०।

—नीलिमा, बी० ए०

ईश्वरीय लीलाका चमत्कार

कुछ समय पहलेकी बात है। मेरे मित्र श्रीकिशोरीलाल फौजदार, जो 'जिला-राजनीतिक-पीड़ित-समिति, आगरा' के उपमन्त्री हैं। पिछले चार माहसे फोड़ोंसे पीड़ित थे। उनके दाहिने पूरे पैरमें छोटी-छोटी फुंसियाँ हो गयी थीं, जिनसे पानी झरता था। फुंसियाँ आगे बढ़कर कमरतक आ गयी थीं। डॉक्टरोंकी दवा की तथा इंजेक्शन भी लगवाये, किंतु कोई लाभ न हुआ। मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की। बादमें गाँवके कुछ अताइयोंसे भी उपचार कराया, लेकिन कोई लाभ न हुआ और रोग बढ़ता ही गया। आखिरको इस रोगसे तंग आकर उन्होंने सफेद कनेरके पत्तोंको कड़ुए तेलमें जलाकर फुंसियोंपर मालिश कर दी, जिससे उन्हें बड़ी तकलीफ और बड़ी बेचैनी हुई। रातको वे बहुत ही दुःखी हो गये और भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे कि 'हे भगवन्! ऐसा मेरा क्या अपराध है जिसके लिये मुझे इतना कष्ट दिया जा रहा है। आप तो कृपानिधान हैं और हैं भक्तवत्सल, मुझे क्षमा करो और मेरा इस रोगसे छुटकारा कराओ।' थोड़ी देर बाद उनको नींदकी झपकी लगी तो क्या देखते हैं कि एक दाढ़ीवाले साधु-महात्मा सामने खड़े हैं और कह रहे हैं कि 'वत्स! कलसे लाभ होगा और दो दिनोंमें ठीक हो जाओगे।' जब आँख खुली तो वहाँ न साधु थे, न और कोई। श्रीफौजदार सोचने लगे कि ऐसे रोगसे इतनी जल्दी कैसे लाभ होगा। भगवान्‌की लीला अपार है, जैसे ही प्रातः

श्रीकिशोरीलाल उठे तो उन्हें आशातीत लाभ प्रतीत हुआ और साधु-महात्माद्वारा कहे अनुसार दो दिनमें तो रोग बिलकुल ही चला गया। अब श्रीफौजदार बिलकुल ही ठीक हो गये हैं। यह भगवान्‌में अटल विश्वासका ही अद्‌भुत चमत्कार है।

—उत्तमचंद जैन, बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०, वकील

सहृदयता

बात उस समयकी है जब स्वर्गीय श्रीसुजानसिंहजी साहेब जोधपुर स्टेटकी फौजके कर्नल थे एवं तीन गाँवोंके जागीरदार भी थे। उनके अधिकारमें हमारा गाँव भैसाणा (सोजन परगनेमें है) भी था। अतएव आप सालमें एक-दो बार हमारे गाँवमें आकर अपने बंगले (रावले)-में ठहरा करते थे। हमारे दादाजी साहब श्रीछगनीरामजीकी उनसे अच्छी पटती भी थी। अतएव एक दिन मेरे दादाजी मुझे उठाकर वहाँ ले गये; क्योंकि मेरे पैरमें इतने अधिक फोड़े हो रहे थे कि मुझसे चला नहीं जाता था। हमारे रावराजाजी (जागीरदार) साहेब डॉक्टरीका भी अच्छा ज्ञान रखते थे। उनके पास दवाइयाँ भी काफी रहती थीं। अपने बंगलेपर आये लोगोंको कुछ दवाइयाँ आप मुफ्त वितरण किया करते थे। मैं और दादाजी वहाँ पहुँचे, आप बैठे अखबार देख रहे थे। हमें आया देख दादाजीसे कुशल पूछते हुए उठकर खड़े हो गये और हमें आसन दिया। हमारे बोलनेके पूर्व ही आपने मेरे पैरका दर्द देखकर उसके बारेमें पूछते हुए एक आदमीसे दवाईकी पेटी एवं कुछ गरम पानी लानेको कहा। पानी आनेके बाद एक प्लेटमें मेरा पाँव रखकर आप स्वयं धोने लग गये। दादाजीने, मैंने एवं और लोगोंने बहुत आग्रह किया कि 'हम धो देंगे, आप छोड़ दें', मगर आपने व्यंगपूर्वक मेरी तरफ देखकर कहा कि 'क्या तुम्हें मेरी सेवा स्वीकार नहीं है?' आपके मुँहसे सहसा यह वचन सुनकर सब चुप हो गये। परंतु मेरी आँखें बरबस भर आयीं। एक इतने बड़े जागीरदारका एक गरीबके

साथ इतना अच्छा व्यवहार, जिसका कोई मूल्य ही दुनियामें नहीं। मेरी आँखोंमें पानी आना स्वाभाविक था।

अपने हाथोंसे घाव धोकर मवाद तथा गन्दा खून निकालकर दवाई लगाकर पट्टी बाँध दी और अधिकारके साथ यह कहा कि—'तुम्हें रोज आकर मेरी सेवा स्वीकार करनी होगी।' मैं क्या कहता! कहनेके लिये मेरे पास क्या था। उनके स्नेहभरे अधिकारपूर्ण आदेशके सामने सिर हिलानेके सिवा और क्या जवाब हो सकता था।

—मीठालाल जोशी, पोन्नेरी

तक्षकदेव

(अद्‌भुत, किंतु सत्य दर्शन)

आज दैवी शक्तियोंके प्रति हमारी आस्था लुप्तप्राय है। आजके सभ्य एवं प्रगतिशील कहे जानेवाले लोग तो दैवी शक्तियोंको केवल कपोलकल्पित सिद्ध करनेमें ही संलग्न हैं। पाश्चात्त्य सभ्यताके इस कुप्रभावने हमें क्या-से-क्या बना दिया और अभी क्या कर दिखायेगा, कहना असम्भव है। कोई विश्वास करे या न करे; किंतु यहाँ मैं एक ऐसी दैवी शक्तिका परिचय देना चाहता हूँ, जिसमें केवल आस्था ही की जा सकती है।

उत्तरप्रदेशके गाजीपुर जिलेमें विश्वम्भरपुर नामका एक छोटा-सा ग्राम है। यह ग्राम उत्तरपूर्वीय रेलवे स्टेशन करीमुद्दीनपुर तथा ताजपुर डेहमाके मध्य स्थित है। इस ग्राममें एक दैवी शक्ति—जिन्हें यहाँके लोग 'तछ्बीर बाबा' नामसे पुकारते हैं—प्रत्यक्ष कार्य करती है। शुद्धरूपमें ये तक्षकदेव हैं। महाभारत एवं प्राचीन पुस्तकोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सज्जन तक्षकदेवके नामसे अवश्य ही परिचित होंगे। खाण्डव वनके जलाते समय तक्षककी सहायताके लिये इन्द्रभगवान्‌ने सक्रिय भाग लिया था। राजा परीक्षित्‌को तक्षकने ही काटा था। जनमेजयका सर्पयज्ञ भी इनसे ही सम्बन्धित था।

इस युगमें तक्षकदेवकी महिमा स्थानीय लोगोंके लिये वरदान सिद्ध हुई है। तक्षकदेवकी शक्तिका आभास सर्पके काटनेपर तत्काल दृष्टिगोचर होता है। इन पंक्तियोंके लेखकने विषैले

सर्पद्वारा काटे गये मूर्च्छित व्यक्तियोंको तक्षकदेवकी कृपासे पूर्ण स्वस्थ होते हुए सैकड़ों बार प्रत्यक्ष देखा है और परोपकारकी भावनासे ही इस रहस्यका उद्‌घाटन भी यहाँ किया जाता है, जिससे अधिक-से-अधिक लोग लाभान्वित हो सकें।

विषैले सर्पके काटनेपर अचेत स्थितिमें चारपाईपर लोग यहाँ लाये जाते हैं और व्यक्तिविशेषके दरवाजेपर लाकर लिटा दिये जाते हैं। लगभग पाँच, दस मिनटके बाद ही दरवाजेवाले व्यक्तिके घरका कोई भी पुरुष कुएँसे पानी लाकर मुँहपर छींटे देता है। पानीके छींटे पड़ते ही विषका प्रभाव जाता रहता है। अब वह व्यक्ति पूर्ण सचेत होकर पैदल स्वतः ही अपने स्थानको जाता है। यह तक्षकदेवकी महिमा है। इतना ही नहीं, विशेषता तो यह है कि चाहे कहीं भी किसीको सर्प काटे, तक्षकदेवका स्मरण करनेपर ही चंगा हो जानेकी सम्भावना है, किंतु पीछे इस स्थानतक आकर प्रणाम करना अनिवार्य है। समीपके लोग तो बेहोशीकी दशामें ही लाये जाते हैं; किंतु सुदूरके लोग स्मरणमात्रसे स्वस्थ होकर इस स्थानतक आकर प्रणाम कर जाते हैं। न आनेपर वर्षोंतक विषका प्रभाव देखा गया है; किंतु आ जानेपर पुनः विषका प्रभाव नहीं रह जाता। इस गाँवमें तक्षकदेवका यह चरित्र बहुत वर्षोंसे प्रत्यक्ष है। इस घोर अनास्थाके युगमें ऐसी दैवी शक्तिके कार्यको देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। यद्यपि मृत्युका कोई उपचार नहीं है तथापि सर्पदंश-रोगकी यह संजीवनी अवश्य ही दुर्लभ है।

इस विश्वम्भरपुर ग्राममें छः-सात घर दोनवार-वंशीय भूमिहार ब्राह्मण-परिवार है। इस परिवारभरके तक्षकदेव कुलदेवकी भाँति

समझे जाते हैं। तक्षकदेवकी न तो कोई मूर्ति है और न तो उनके लिये कोई मन्दिर आदि ही है। केवल बाबू बगेसर रायके दरवाजेपर जाकर प्रणाममात्र (साष्टांग) किया जाता है। किसी प्रकारकी न कोई कभी पूजा करता है और न तो कभी कुछ भी शुल्क या दान ही लिया जाता है। केवल यहाँ नतमस्तक हो जाना ही आवश्यक है। ज्ञातव्य है कि ग्रामकी सीमामें प्रवेश करते ही रोगीका विष जाग्रत् हो जाता है।

ऐसी दैवी शक्तियोंका हम कोटिशः अभिनन्दन करते हैं और सभी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आस्था रखना ही श्रेयस्कर होगा।

—श्रीसुधाकर तिवारी, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न,
बसंत कॉलेज, राजघाट, वाराणसी

बाँसुरी नयी, पर स्वर फटी

विजयादशमीका दिवस था। नगरके मध्यस्थित घण्टाघरके पाससे मैं गुजर रहा था। लोगोंकी भीड़ देखकर एवं किसी व्यक्तिका करुणासे परिपूर्ण आर्त स्वर सुनकर मैं ठिठक गया। देखा तो दाँतोंतले अँगुली दबाकर रह जाना पड़ा।

घटना यह थी कि एक रिक्शेवाला, जिसके पैरोंमें भारत माँके चरणोंका रज-पुंज था, घुटनेतक मैली-फटी धोती थी और जिसके बदनपर एकमात्र गंजी, जिसे आप केवल गंजी कह सकते हैं, शायद उसी गंजीसे वह अपना रिक्शा भी धूलसे साफ कर लेता रहा होगा—ऐसी थी गंजीकी दशा, सड़कपर लम्बा लेटा हुआ आर्त स्वरमें कराह रहा था। वह किसीसे अपनी सहायताके लिये या बचानेके लिये याचना नहीं कर रहा था; वरं अत्याचारका—अनाचारका विरोध केवल आर्त स्वर एवं बेंतोंके मारद्वारा कर रहा था, वह किसी प्रकारके अपने बलप्रयोगसे विरोध नहीं कर रहा था। उसीके पास 'यमदूत'-सा भारतमाताका ही एक दूसरा पुत्र—रिक्शेवालेका ही एक भाई, (भारत माँके तो दोनों ही पुत्र थे न—) एक पुलिस दारोगाका गर्जन-स्वर गुंजित हो रहा था—'साले, तूने कैसे कहा कि हमें नहीं ले चलेगा? बोल चलेगा कि नहीं! देख रहा है न यह बेंत?'

'मार लो बाबू, मार लो, चाहे जितना बेंत मार लो। यदि बाल-बच्चेवाले होगे तो समझ लो। हम आपको इस अपने रिक्शेपर नहीं ले चल सकते। जानते हो बाबू! यह रिक्शा मेरे

अपने लड़केके समान है। लड़केकी पीठपर उसके लायक ही बैठ सकता है।'

'क्या कहा? नहीं ले जायगा! तो ले मार खा, हरामजादे!' और सड़ा-सड़ दो बेंत माँके एक पुत्रने दूसरे पुत्रपर—अपने भाईपर ही चला दी। 'अभी होश आया कि नहीं रे!'

'और मारो। चाहो तो और मारो। प्राण निकल जायगा, लेकिन अपने रिक्शेपर आपको नहीं बैठाऊँगा।'

'फिर नहीं कहा बैठानेके लिये। ले, चाहता है तो फिर एक बेंत ले!'

'ओफ! और मार लो, और मार लो। हम जानते हैं कि पुलिसवाले क्या हैं।' फिर कहता है—'नहीं ले जायँगे, नहीं ले जायँगे।'

आँखोंसे देखा नहीं गया। भीड़में एक-से-एक भद्र कहानेवालेसे लेकर निम्नवर्गके लोग भी थे। किसीमें इतना साहस न था कि राष्ट्रके, समाजके प्रहरी एवं सहायक तथा सचेतक कहानेवाले खाकी वर्दीधारी शरीरमें वास करनेवाले उस सुरारिसे कुछ कहे, विरोध करे इस अनाचारका कि यह कैसा अत्याचार हो रहा है? इतनेमें फिर एक बेंत जमाते हुए दारोगाका स्वर फूट पड़ा—'अबे बदतमीज! देशको स्वतन्त्रता क्या मिली कि तेरे ऐसे नीचकी भी जबान बड़ी लम्बी हो गयी है। मेरा वश चलता तो तुम सब सालोंको भूनकर रख देता।'

'भून दो साहब, भून दो न। लेकिन इस रिक्शेपर पुलिसके आदमीको नहीं बैठाऊँगा।'

तभी भीड़से एक स्वर आया—'अरे रिक्शेवाले, क्या कह

रहा है तू? इतनी मार खानेपर तो गदहा भी चलने लगता है। इतनी मार खा चुका तब भी दारोगा साहबको नहीं ले जाता।'

ऐसी बात कहनेवाले उस भले मानुषकी ओर गरीबीके पुंजपर अत्याचारका अपने सामर्थ्यसे विरोध करनेवाले रिक्शेवालेकी आग्नेय दृष्टि घूम पड़ी—'आप ही ले जाइये न, क्यों हमसे कहते हैं। हम जब जिंदा रहेंगे बेंत खा लेंगे, पर इस वर्दीवालेको कभी नहीं ले जायँगे।'

और उसके इस बड़े बोलका पुरस्कार बेंतकी मारके रूपमें उसी क्षण फिर मिला। इसी समय, भीड़मेंसे निकलकर एक लम्बा-तगड़ा जवान दारोगाके पास आया—

'कहिये, आपको कहाँ जाना है? दूसरोंकी पीठपर चलनेवाले बाबू! आइये मेरी पीठपर बैठ जाइये, जहाँ कहें वहाँतक पहुँचा दूँगा।'

दारोगाका मुँह तो देखने ही लायक था, फिर भी खिसियानी बिल्ली खंभा नोचने लगी—'जाइये अपना काम कीजिये, आपसे हमसे क्या मतलब है। पीठपर ले जानेवाले और ही कोई होते हैं।'

और 'देखिये' से 'देखो' पर उतर आया वह आगन्तुक युवक एवं दारोगा महोदयको उसने कुछ दिखाया। दारोगाकी सिट्टी-विट्टी गुम। भीड़ने देखा कि दारोगा उस युवकको देखकर—'सैलुट' कर रहा था। सभी हक्का-बक्का। यह क्या-से-क्या हो गया?

रिक्शेवालेको उठाते हुए उस सज्जनने कहा कि 'भाई रिक्शेवाले! अगर दो सवारी एस० पी० के बँगलेतक ले चलो तो दो रुपये दूँगा।' और दो रुपये पर्ससे निकालकर दे दिये।

रिक्शेवाला इस देवताके कर्तव्यको देखकर आनन्दातिरेकसे बोला—'साहब! हमारी पीठपर पड़ी सारी मारका दर्द भूल गया। आप देवता हैं, चलिये।'

रिक्शेवालेके पुत्रसमान रिक्शेकी पीठपर , नहीं-नहीं छातीपर, दारोगा और वे व्यक्ति चल पड़े। कोई बोला—'जरूर कोई बड़ा अफसर रहा होगा। देखा न, कितना न्यायी था।' अपनी पीठपर दारोगाको ले जानेके लिये कह रहा था। पुलिसके ही प्रत्यक्ष दो रूप—'देवता और असुर!'

देशको स्वतन्त्रता मिली है। बाँसुरीका कलेवर बदला जा रहा है, पर उसमेंसे निकलनेवाले स्वर अभी मधुर, सामयिक एवं कर्णप्रिय नहीं हैं।

—गोविन्द

अंगुलबेड़ा (Whitlow)-की चमत्कारी दवा

अंगुलबेड़ा (अंगुलहाड़ा) जिसे अंग्रेजीमें Whitlow ग्रामीण भाषामें गर्धवी (गधइया) या विषकटीके नामसे पुकारते हैं। जो प्राय: नख खूब छोटा कटाने, चोट लगने या जल जाने किंवा विषैली वस्तुके रक्तमें प्रवेश करनेसे हो जाता है। इससे अंगुलीके आगे बड़ी जलन, दर्द और सूजन हो जाती है।

जलन और कष्टके कारण रोगीकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यह बड़ी ही कठिनतासे दूर होता है।

इस रोगपर नर्मदा प्रान्तके सघन वनमें रहनेवाले एक अनुभवी गोंडसे प्राप्त एक प्रयोग है। वह यह है कि आकके दूधको अंगुलबेडापर लगाकर सर्पकी केंचुली चिपका देनेसे जलन और कड़क उसी समय शान्त हो जाती है। दिनमें दो बार, दो दिन लगानेसे आशातीत लाभ होता है।

प्राप्त योगको कई रोगियोंपर आजमाया गया। भगवान्‌की कृपासे जिन्हें डॉक्टरोंने ऑपरेशनकी राय दी थी, वे भी शीघ्र स्वस्थ हो गये।

—श्यामाचरण पाण्डेय, वैद्य, शास्त्री

अरबकी इन्सानियत

'जमादार साहेब! चलिये रोटी खा लीजिये।'

'नहीं, मैंने अभी खाया है।'

'चलिये, चलिये! एक-दो कौर ही ले लीजिये। मेरे गलेकी कसम!'

'नहीं-नहीं, मैं खा चुका हूँ।'

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है। तीन गाँवोंके बीचमें स्वच्छ जलकी एक छोटी-सी बावली थी, उसके किनारे माँकी गोद-जैसी छाया फैलाये एक पुराना बरगदका पेड़ खड़ा था। एक दिन गर्मियोंकी दुपहरीमें उस हरियाले देववृक्षकी छायामें बावलीके किनारे दो मनुष्य बैठे थे। एक था अरब और दूसरा सयाना सेठ। सेठ उस अरबको बाटी खिलानेके लिये कसम दिला रहा था। इसमें कारण था। प्रथम तो वह सबसे डरकर चलनेवाला ग्रामीण व्यापारी था, इससे वह चाहता था कि खिला-पिलाकर और सुपारीका महीन चूरा देकर इसे दोस्त बना लिया जाय। दूसरे, आज यह सेठ अपनी पुत्रवधूके लिये गहना चढ़ानेको लाठी गाँवमें गया था, पर वहाँ लड़कीके पितासे कुछ बोल-चाल हो जानेके कारण गहनेका डिब्बा वापस लेकर आया था। इसलिये रास्तेमें एक हथियारबंद साथीकी उसे जरूरत थी। इसीलिये वह कसम दिला-दिलाकर मनुहार कर रहा था। आखिर, उस अरब सूबेदारको दो बाटियाँ खानी ही पड़ीं।

दिन ढलने लगा, तब अरबने एक कंधेपर थैला लटकाया और दूसरे कंधेपर लम्बी नलीवाली बंदूक लटकायी। कमरकी

कटारको ठीक करके उसे कमरकसके साथ बाँध लिया और उठकर चलनेकी तैयारी की। सेठने भी घोड़ीपर जीन डालकर कस लिया। अरब सूबेदारने पूछा—'सेठ कहाँतक जाना है ?'

'जी! खोपालातक।'

'मेरा भी वही रास्ता है, चलो।'

सूबेदार अमरेलीकी नौकरी छूट जानेके कारण रोटियोंकी खोजमें बड़ौदा जा रहा था। दोनों चलने लगे, तब अरबने पूछा—'सेठ! तुम्हारे पास कोई जोखिम तो नहीं है न ?'

'नहीं बापजी! हमलोग जोखिम रखते ? बिलकुल खाली हूँ।' सेठने कहा।

अरबने फिर कहा—'सेठ! छिपाना नहीं, हो तो मेरे हाथमें सौंप देना, नहीं तो जान खो बैठोगे!'

'आपके गलेमें हाथ सूबेदार! कुछ भी नहीं है।'

सेठके झोलेमें एक डिब्बा था और डिब्बेमें गहना था। दोनों आगे बढ़े। आँकड़िया और देरडी गाँवोंके बीचमें एक लम्बा मैदान पड़ता था। वहाँ 'गीगा शियाल' नामक एक कोली अपने अठारह जवानोंको साथ लिये रास्ता रोके खड़ा था।

इन यमदूतोंको दूरसे ही देखकर सेठका तो राम ही रम गया। उसकी आवाज फूट निकली। उसके मुँहसे निकल गया 'मार डाला सूबेदार! अब क्या होगा?'

'अपने पास क्या है, जो वे लूटेंगे।' अरबने कहा।

'सूबेदार! मेरे पास पाँच हजारका गहना है!'

'अरे सेठ! झूठ क्यों बोले थे! लाओ, अब तुरंत निकालकर मुझको दे दो, नहीं तो ये कोली तुम्हारी जान ले लेंगे।

सेठने डिब्बा निकालकर अरबके हाथपर रख दिया। यह सारी चीज सामने आनेवाले कोलियोंने आँखोंसे देख लीं और गीगाने जोरसे पुकारकर कहा—'अरे सूबेदार! रहने दे, नहीं तो तू और यह बनिया—दोनों ही जानसे हाथ धो बैठोगे। सेठ सूबेदारने सेठसे कहा घोड़ी दौड़ाकर भाग जाओ, अपनी जान बचाओ। मुझ एकको ही मरने दो।'

सेठने घोड़ी दौड़ायी, कोलियोंने उसे नहीं रोका। वे जान गये थे कि गहनेका डिब्बा तो अरबके पास है। उन्होंने अरबको घेरकर कहा— 'अरे सूबेदार! क्यों डिब्बा लेकर तुमने अपने ही हाथों अपनी मौतको बुलाया ?'

सूबेदारने कहा—'मैंने उसका अनाज खाया था।'

'अरे—सारा अनाज निकल जायगा अभी! डिब्बा दे दे जल्दी।'

'नहीं, मैंने उसका अनाज खाया है।'

'अरे मूर्ख सूबेदार! घरमें बच्चे बाट देख रहे होंगे।'

'नहीं, मैंने उसका अनाज खाया है।' बस, सूबेदारकी जबानपर यही एक वाक्य था। कोलियोंने सूबेदारका पीछा किया, परंतु उसके समीप जानेका किसीका साहस नहीं हुआ; क्योंकि उसके पास बारूदभरी बंदूक थी। कोली यह जानते थे कि 'अरबके बंदूककी गोली कभी खाली नहीं जाती।'

थैलेमें गहनेका डिब्बा और हाथमें बंदूक। अरब तेजीसे रास्ता काटे जा रहा है। इधर-उधर कोली चल रहे हैं। कुछ समीप आकर कोलियोंने धनुष खींचकर तीर चलाना शुरू किया। सूबेदार बदनमें घुसे तीरोंको खींचता और तोड़ता हुआ तथा

बंदूकसे कोलियोंको डराता हुआ आगे बढ़ा जा रहा है।

पर वह बंदूक चलाता क्यों नहीं ? इसीलिये कि बंदूकमें भरी गोलीके सिवा उसके पास और गोली-बारूद नहीं थी, जिसे फिरसे भरकर वह चला सके। इसीलिये वह डराकर अपना बचाव कर रहा था।

अब तो आँकड़िया गाँव नजदीक आ गया। कोलियोंने समझा, अरब देखते-ही-देखते गाँवमें घुस जायगा। तब गीगा शियालके जवान भानजेने चिल्लाकर कहा—'अरे शर्म है! बारह-बारह आदमियोंके बीचसे एक अरब गहनेका डिब्बा लेकर निकल जायगा। क्या मुँह दिखाओगे औरतोंके सामने जाकर।'

इतना सुनतेही कोली अरबपर टूट पड़े। अरबने गोली चलायी और वह गीगाके भानजेकी खोपड़ी फोड़कर खूनसे नहाती-धोती सनसनाहट करती आगे निकल गयी। अरबकी अचूक गोली थी।

पर अब अरबके पास और गोली थी नहीं। कोली उसपर टूट पड़े। अरबने हाथमें ले ली तीखी धारवाली कटार और उसीसे उसने कई कोलियोंको सुला दिया। अब तो गाँव आ गया। गीगा अपने बचे हुए साथियोंको लेकर लौट गया।

खूनसे लथपथ अरब धीरे-धीरे पैर बढ़ाने लगा। उसकी आँखोंपर खून चिपटा था। शरीरसे खून चू रहा था। उसे रास्ता दिखायी नहीं दे रहा था। वह सातापुरी नदीके किनारे उतरकर एक शिलापर बैठ गया और अपना लहू-लुहान मुँह धोने लगा। नदीके उस किनारे आँकड़िया गाँव था। आई जान बाईकी जगहपर गाँवके गरासदार चारण बीकोभाई बैठे थे, उनकी नजर

गयी—कोई लहूलुहान जख्मी आदमी पानी पीने बैठा है। बीकोभाई उसके पास आये। अरबकी आँखें बंद थीं। उसने अनजान आदमीके पैरकी आहट सुनकर अपना थैला दबाया और पुकारा—'चोर-चोर!'

बीकोभाईने अरबको समझाया। उन्होंने उसका शरीर धोया, फिर घर जाकर एक अच्छे जर्राह (अस्त्र-चिकित्सक)-की व्यवस्था करके मरहम-पट्टी करवायी। दूसरे दिन ही गीगा शियाल अपने तीस आदमियोंको साथ लेकर आ पहुँचा और बीकोभाईसे कहने लगा—'मेरे चोरको मुझे तुरंत सौंप दो, नहीं तो, मैं गाँवके चारों ओर सूखे काँटे बिछाकर आग लगा दूँगा।' बीकोभाईने कहा—'गीगा! चारणकी शरणमें आये हुएको यों नहीं सौंपा जाता। मैं चारण हूँ।'

गीगा बोला—'मेरे गाँवके किनारे मेरे भानजेकी लाश जल रही है। उस जवानको मारनेवालेको मैं उसीके साथ उसी चितामें जला दूँगा, तब मुझे संतोष होगा। अतः मुझको उसे अभी दे दो, नहीं तो, तुम्हारी आबरू नहीं रहेगी।'

बीकोभाईके साठ रबारी साथी लाठी लेकर खड़े हो गये और गीगाको फटकारकर बोले—'अरे गीगला! भाग जा यहाँसे, हमारे जीवित रहते शरण आये हुएको तू नहीं ले जा सकता।' सारा गाँव गरज उठा, गीगा लजाकर वापस लौट गया। कुछ दिनोंमें अरब अच्छा हो गया, परंतु सोते-जागते वह कभी अपना थैला नहीं छोड़ता। आराम होनेपर उसने बीकोभाईसे जानेके लिये अनुमति माँगी।

बीकोभाईने पूछा—'सूबेदार! राह-खर्चके लिये कुछ है या नहीं।'

सूबेदारने केवल इतना ही कहा—'नहीं'।

बीकोभाईने खर्च दे दिया। अरबने प्रार्थना की कि 'बीकोभाई! खोपालातक मुझे पहुँचा आइये।' बीकोभाईने सोचा कि अरब गीगा शियालसे डरकर साथ चलनेके लिये कह रहा है। दोनों खोपाला जा पहुँचे। अरबके मनमें बड़ी परेशानी थी—'कैसे सेठ जल्दी मिले और उसका डिब्बा उसे सौंप दूँ।' सेठका नाम अरबको याद नहीं आ रहा था। सेठको उसकी चीज दिये बिना उसे जरा भी चैन नहीं था।

इतनेमें खोपालाके बाजारमें अरबको वह सेठ दिखायी दिया। अरबने उसके पास जाकर थैलेसे डिब्बा निकालकर उसके हाथपर रख दिया और कहा—'सेठ! अपना गहना जल्दीसे गिनकर सँभाल लो।'

बीकोभाईके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उन्होंने पूछा—'अरे सूबेदार! तुम्हारे पास इतना धन था, फिर तुमने कैसे यों कहा कि 'मेरे पास कुछ भी नहीं है?'

अरबने कहा—'यह धन तो दूसरेका था।' बीकोभाईने कहा— 'धन्य है तेरी जननीको सूबेदार।' बीकोभाईको अब पता लगा कि 'अरबने अपने लिये नहीं, पर दूसरेके लिये बेमतलब इतना झंझट मोल लिया।' बीकोभाईने सेठको सब बातें कहकर समझायीं! सेठको जरा भी आशा नहीं थी गहने मिलनेकी। इससे सेठको बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। सेठने अरबको इनाम देनेके लिये पाँच रुपये निकालकर दिये। अरबने सिरसे लगाकर रुपये वापस सेठके हाथपर रख दिये।

सेठकी पीठपर जूती मारकर बीकोभाईने कहा—'ब्याजखोर

बनिये! तेरे पाँच हजारके गहनोंके लिये मरनेको प्रस्तुत इस अरबको पाँच रुपल्ली देते तुझे शर्म नहीं आयी?'

अरब बड़ोदा जा पहुँचा। उसके हृदयमें बीकोभाईका नाम गूँज रहा था।

—एन० ठक्कर

सर, साहेब, दीवान साहेब, प्रभाशंकर भाई पट्टणी साहेब आदि कहनेवाले तो बहुत मिलते हैं, परंतु 'अरे पट्टणा' कहनेवाला तो यह पहला ही मिला और इससे सचमुच मुझे बड़ा मजा आया।'

(अखण्डानन्द)

॥ श्रीहरि: ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
55	महकते जीवनफूल	164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो)
57	मानसिक दक्षता	165	मानवताका पुजारी ,,
59	जीवनमें नया प्रकाश	166	परोपकार और सच्चाईका फल (पढ़ो, समझो और करो)
60	आशाकी नयी किरणें	191	भगवान् कृष्ण
64	प्रेमयोग	193	भगवान् राम
119	अमृतके घूँट	195	भगवान्‌पर विश्वास
120	आनन्दमय जीवन	196	मननमाला
122	एक लोटा पानी	202	मनोबोध
129	एक महात्माका प्रसाद	387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला
130	तत्त्वविचार	501	उद्धव-सन्देश
131	सुखी जीवन	510	असीम नीचता और असीम साधुता
132	स्वर्णपथ	542	ईश्वर
133	विवेक-चूड़ामणि	668	प्रश्नोत्तरी
134	सती द्रौपदी	698	मार्क्सवाद और रामराज्य— स्वामी करपात्रीजी
137	उपयोगी कहानियाँ	701	गर्भपात उचित या....
147	चोखी कहानियाँ	747	सप्त महाव्रत
151	सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला	774	कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित
157	सती सुकला		
159	आदर्श उपकार— (पढ़ो, समझो और करो)		
160	कलेजेके अक्षर ,,		
161	हृदयकी आदर्श विशालता ,,		
162	उपकारका बदला ,,		
163	आदर्श मानव-हृदय ,,		

यह पहला ही मिला

स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टणी (भावनगरके दीवान) उन दिनों बंबईमें थे। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक ताजमहल होटलसे अपने एक मित्रके साथ कोलाबा काँजवेतक घूमने जाया करते। एक दिन सबेरे वे कोलाबा काँजवेपर घूम रहे थे कि एक पागल-जैसे भिखारीने पुकारकर कहा—'अरे ओ पट्टणा! बगुलेकी पाँख-जैसे सफेद कपड़े पहनकर क्यों चक्कर लगाया करता है; मैं तेरे गाँवका हूँ। बहुत दुःखी हूँ, कुछ दे न, पट्टणा।'

पट्टणी साहेबके साथी श्रीमोहनभाईको तो यह सुनकर कुछ क्षोभ हुआ; परंतु पट्टणी साहेबने शान्तिसे मोहनभाईसे पूछा—'आपके पास कुछ है क्या?' मोहनभाईने उत्तर दिया—'चार-आठ आने पैसे होंगे, बाकी तो सौ-सौके नोट हैं।' पट्टणी साहेबने दो नोट यानी दो सौ रुपये उनसे लेकर भिखारीको दे दिये और कहा—'ये दो सौ रुपये लो, और जरूरत हो तब मुझे भावनगर लिखना, संकोच मत करना; धंधा-रोजगार शुरू करना। इस बड़े शहरमें मेहनत करोगे तो फिर जीवन-निर्वाहमें कठिनता नहीं होगी।'

भिखारी तो आश्चर्यसे उनकी ओर देखता रह गया और अपकारके बदले उपकार करनेवाले श्रीपट्टणी साहेबके पैरोंमें लोट गया। कुछ आगे बढ़नेपर मोहनभाईसे नहीं रहा गया और उन्होंने कहा—'ऐसी भद्दी भाषाका प्रयोग करनेवालेको इतनी बड़ी रकम देकर आपने उसे क्यों प्रोत्साहन दिया, यह मेरी समझमें नहीं आता।' सर प्रभाशंकर भाईने कहा—'देखिये! मुझे